ज्ञानपीठ से,

सन्मति साहित्य रत्न माला के अर्न्तगत, लोकोदय ग्रंथ माला के माध्यम से ललित कला सम्बन्धी साहित्य प्रदान किया जाएगा। हमारे प्रेमी पाठक इस माला में और क्या चाहते हैं उनका विचार पूर्ण विश्लेषण निमंत्रित है।

—मंत्री

सन्मति साहित्य रत्न माला के
अन्तर्गत लोकोदय ग्रंथ माला

का

प्रथम ग्रंथ	प्रथम रत्न

पीयूष घट

लेखन :

श्री विजय मुनि जी शास्त्री

सं०

सुबोध मुनि

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

एक रुपया ५० नये पैसे

पुस्तक में योग !

श्री विजय मुनि जी का लेखन में.
श्री सुबोध मुनि „
श्री डा० सत्येन्द्र जी का भूमिका में.
श्री जगदीश जी का चित्रांकन में.
श्री कुमार सत्यदर्शी जी का पुस्तक-शिल्प में.
भ० महावीर के प्रभास्वर जीवन का
संम्पूर्ण कथा पात्रों के सुन्दर संस्कारों में.
सन्मति ज्ञान पीठ आगरा का प्रकाशन में.
कश्मीर प्रेस आगरा का कवर मुद्रण में.
रत्नाश्रम प्रेस आगरा का मुद्रण में.
सन् १९६० एव शाके १८८२ का काल निर्धारण में.
आधुनिक युग का कला की सफल अभिव्यक्ति में.
अर्थ का पुस्तक के सम्पूर्ण सौन्दर्य में.
भूले विसरे कर्म योगियों का हृदय के सुरक्षित कोष में.

पूर्ण चित्रांकन

आप असीम और मैं ससीम, आप पूर्ण और मैं अपूर्ण !

आप महान् और मैं लघु, आप सिन्धु और मैं बिन्दु !!

तव .. ..

कैसे करू आपके कर कमलों में

यह अपनी लघुतम कृति सपर्पित ?

पर............

जव मिट्टी को रोंद रोंद कर घट वनाया,

जव भटकते मन को अभ्यास की शृङ्खलाओं में

बाँध-बाँध कर उस पर चित्र वनाए,

और जव हृदय का रस उंडेल-उंडेल घट भरा है

तव............

गुरुदेव, जी कैसे, माने अधूरी इस चित्रावली को समर्पित किए विना ?

पर .. ..

इन टेढी मेढी रेखाओ में आपको पूरा-पूरा भाव भी मिले या न मिले !

मिलने की वात भी कैसे कहूँ ! अहंकार न आजायगा ! ऐसा कहूँगा तो ?

फिर भी....... ....

इसे गृहण कीजिए गुरुदेव,

जो लरिका कछु अनुचित करई !

गुरु पितु मातु मोद मन भरई !!

मेरे जी की हवस पूरी हो जायगी,

तव मैं.......... .

मान लूंगा मेरी चित्रावली मे चित्रांकन पूर्ण है !

—विजय मुनि

❋ क्रम ❋

पीयूष घट और..........!

⊕

⊕

ज्ञान पीठ ने गत दिवसों की
स्वल्प कालावधि में ही ८०
महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन
कर, समाज की जो सेवा की
है, तथा एक खास प्रकार का
प्रबुद्ध पाठक वर्ग तैयार किया है, उससे जैन समाज ही नही अपितु मानवता वादी आस्था वाला विशिष्ट वर्ग भी परिचित है, कि ज्ञान पीठ के अधिकारी गहरी दिलचस्पी और लगन से जन-जन के कानो मे मातवता वादी संगीत के स्वर—सुना कर अपनी निष्ठा और सेवा भाव का परिचय दे रहे हैं।

पीयूष घट, ज्ञान पीठ के प्रशस्थ उद्देश्यों के अनुरूप ही आप के कर कमलों में प्रस्तुत किया जा रहा है आगम उदधि से भरे हुए इस मधुर-मधुर नाम वाले घट को, संस्था के प्रेमी पाठकों के हाथों तक पहुँचाते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

सन्मति ज्ञान पीठ से सन्मति साहित्य रत्न माला के अन्तर्गत, लोकोदय ग्रंथमाला का प्रकाशन प्रारम्भ किया जा रहा है। लोकोदय ग्रथ माला प्रारम्भ करते हुए सबसे पहले हम 'पीयूष घट' प्रस्तुत करते है। हमारे अनेकानेक प्रेमियो और हम जोलियों का आग्रह था कि ज्ञान पीठ से लोकोदय ग्रंथ माला का प्रकाशन किया

जाए ! आज उन का कहा पूरा होरहा है। अभी पहला घट है, फिर दूसरा भी आएगा और तीसरा भी...... !

इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न टैकनिक की कहानी, सामाजिक धार्मिक एव व्यग्यात्मक—एकाकी नाटक, जीवन स्पर्शी लघु रूपक आदि प्रस्तुत करने का तय किया है। पाठकों की रुचि का हम अधिक से अधिक आदर करना चाहते है अतः उन्हे निमंत्रण है लोकोदय ग्रंथ माला में वे उक्त योजना के अतिरिक्त क्या चाहेगे। उन की चाह को ध्यान में रखकर ही ज्ञान पीठ का परिवार अपना निर्णय करेगा। पायूष घट और. ... ! और के अन्तर्गत हम उपर्युक्त उपहार भेंट करना चाहते है !

और . ! की वात पूरी-कर पुनः पीयूष घट के सम्बन्ध मे कहना है—ये कहानियाँ सन्त लेखक आदरणीय श्री विजय मुनि जी-शास्त्री द्वारा लिखित है !

सन्त लेखक की लेखनी का मधुर प्रसाद हमे मिला, वना सवार कर इसे हम आप तक पहुँचा रहे है। इस पुस्तक को इतनी शीघ्रता से प्रकाशित करवाने में हमारे प्रेमी पाठकों का भी पूरा-पूरा योग रहा है, जिन्होंने भारत के प्रसिद्ध मासिक; साप्ताहिक पत्रों व विशेषांकों एवं जैन समाज के सभी पत्रो में इन कहानियों को पढ़कर मुनिजी की कहानियों को प्रकाशित करने का आग्रह किया था—और अपनी प्रतियाँ आग्रिम सुरक्षित कराई थी !

लोकोदय माला का प्रकाशन, पर्याप्त जन प्रिय होगा यह तो पाठकों के पीयूष घट के प्रकाशन के लिए किए गए स्नेहाग्रह से ही स्पष्ट परिलक्षित होरहा है।

प्रिंट की आधुनिक टैकनिक, आज युग के साथ-साथ कुलांछे भरती हुई अनुदिन आगे बढ़ती चली जा रही है। अतः कला प्रिय श्री कुमार सत्यदर्शी जी के सक्रिय सहयोग से मोर्डन आर्ट से सज्जित लोकोदय ग्रंथ माला के सम्पूर्ण ग्रंथ तथा सन्मति साहित्य रत्न माला के अर्न्तगत प्रकाशित होने वाले आगमी ग्रंथ श्री सत्यदर्शी जी के हाथों से सज संवर कर आएंगे। आप का सम्पादन कोशल और पुस्तक-शिल्प अनूठा है। आप का सक्रिय सहयोग ज्ञान पीठ को मिला है और भविष्य में भी मिलता रहेगा—हमारी यही शुभाकाक्षा है।

—मंत्री
सोना राम जैन

इस पुस्तक की कहानी !

⊕

कहानी के प्रभाव का जहाँ प्रश्न
है, वहाँ मुझे कहना है—इस संग्रह
के सभी पात्र अध्यात्म पथ
के ज्योति स्तम्भ हैं ! और है
उन के पावन पथ चिन्हों पर
स्वर्ण-धूली का सुन्दर अंकन !!

'पीयूष घट' की कहानियों का सम्पादक होने के नाते मैं कुछ सम्पादकीय अंश प्रस्तुत कर दूं जिस से पूज्य मुनि जी और प्रिय पाठकों के अमुक प्रश्नों से उऋण हो सकूं !

एक : प्रत्येक कहानी के अन्त में मैंने कहानी में झांकते वाले सत्य की रेखाएं खींचना चाही है ! मैं अपनी दृष्टि से इन रेखा-चित्रों को सत्य मानता हूं। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि पाठक भी यह माने, कि जिन भावों में डूब कर मैंने चित्रांकन

किया है सत्य, उसी में केन्द्रित हो गया हो ! यह भी दावा नही किया जा सकता है कि लेखक ने जिन भावों में निमज्जित होकर कथाओं का प्रणयन किया है, उन्ही भावों को मैं टिप्पणियों मे अंकित कर सका हूँ ! क्यों कि कहानी गत सत्य, आज तक सुधी आलोचको टिप्पणीकारों और स्वयं लेखको द्वारा भी वह व्यक्त नही हो पाया है ! प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति और कल्पना भिन्न होती है, तदनुसार उसका प्रभाव भी भिन्न होता है। सत्य वही है, जो जिसके हृदय को छू जाए। बहुदा यह देखा गया है कि एक ही कहानी का विभिन्न अध्येताओं पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पडता है ! अत. सत्य केन्द्रित नही है। कहानी पढ़ कर पाठक के हृदय पर जो प्रभाव पड़े बस वही है—सत्य की रेखा !

दो : कहानियों मे सरसता लाने के लिए मैंने काफी जगह काट छांट भी की है। कहानी में, कहानी पन लाने के लिए मुझे यह करना ही था ! लेकिन लेखक की मूल भावना को आगे पीछे धकेल कर मैंने कुछ नही किया ! मूल भावों के अनुरूप ही पच्चीकारी कर, कहानियों को कहानी के अनुरूप बनाने या यत्न किया है। कहानी के अन्त मे ग्रथों का नामोल्लेख ज्यों-का-त्यों रखा है। जिस कहानी के अन्त मे लेखक ने ग्रंथ का नाम देकर उन पर कलम फेरदी थी उन्हे मैंने सही मान कर दे दिया है।

तीन : ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक कहानी लिखते समय लेखक को पर्याप्त विधिनिषेधो को स्वीकार करके चलना पड़ता है। उस की लेखनी चलती है, पर मन ठिठक-ठिठक

जाता है कि कहीं मेरे द्वारा देश काल का उल्लंघन न हो जाए। मेरे सम्माननीय, सन्त लेखक श्री विजय मुनि जी को, संभव है कहानियाँ लिखते समय यह धारणा रही हो कि ये कथानक अमुक प्रकार के घटना और घात प्रतिघात के क्रम से धार्मिकों के मन वाणी और सस्कारों का वैभव बन गए है। अतः कल्पना के मिश्रण से उन की भावनाओं को आघात पहुँचेगा। परन्तु मुझे विनम्रता पूर्वक मुनिजी से कहना है—ऐसी बात नही है एतिहासिक कहानी मे भी कल्पना को अवकाश तो रहता ही है। थोड़ा-सा कल्पना का पुट देकर कथा-शिल्प को और अधिक संवार कर, सरसता लाई जा सकती थी। इतिहास की परिक्रमा करते हुए भी यदि थोड़ा, कल्पना का मधु और घोल दिया जाता तो सहृदय पाठको का मन, तन का भान भूल कर कहानी गत पात्रो के सुख दु.ख को अपना सुख दुःख समझकर पढ़ने मैं रमता! जिन्हे ठेस लगती उन्हें लग जाती उनकी रक्षा भी तो आखिर कहाँ तक होगी! पुराना पन तो दफनाने के लिए ही है। जब तक जान लेवा जर्जर-हवेलियाँ नहीं गिरेंगी तब तक नव निर्माण और नव सर्जन कैसे—होगा?

चार . प्रस्तुत सग्रह की अनेक कहानियों का मेरे हृदय पर स्थायी प्रभाव है। सुभद्रा की धर्म निष्ठा की नैतिक जीत ने मुझे काफी प्रभावित किया। मैंने जहाँ अन्य कहानियों के शीर्षक बदले वहाँ जीत शब्द पर ही ५—६ शीर्षक रख दिए है। जैसे 'देव हारा मानव जीता' विष हारा अमृत जीता' 'माता की ममता जीत गई' आदि!

पांच : अस्तु पाठको को श्री विजय मुनि जी को हार्दिक धन्यवाद

देना चाहिए जिन की कृपा से यह सचित्र 'पीयूष घट' आप के हाथों में है। मैंने तो, लेखक के अत्यन्त परीश्रम से आगम के समुद्र में गोते लगा-लगाकर लाए गए —रत्नों को चमकाए भर है !

छ : शेष में मुझे विश्वास पूर्वक अहना है—लोक जीवन एवं लोक साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन करने वाले विद्वानों में हिन्दी क्षेत्र के चक्रवर्त्ती' गहन चिन्तक प्रबुद्ध अध्येता, सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री सत्येन्द्र जी डी० लिट द्वारा, प्रस्तुक पुस्तक की सूक्षम निरीक्षण पूर्वक प्रदत्त भूमिका 'पीयूषघट : आचमनी' यहाँ साभार प्रस्तुत की जारही है। उन की आचमनी आपको पीयूष पान में परम सहयोगी होगी।

जैन भवन
लोहामन्डी,
आगरा.
२१--६--६०

— ७ं।
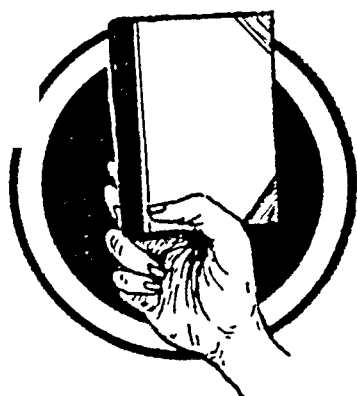
पीयूष घट : आचमनी

⊕⊕

यह पीयूष घट है !
यह घट नारी के लिए है, पुरुष
के लिए है, और है सन्यासी
के लिए भी ! नहीं; ये नारी
पीयूष से परिपूर्ण घट है,
पुरुष-पीयूष से परिपूर्ण घट है,

और है संन्यासी पीयूष से परिपूर्ण भी। वस्तुतः घट तो एक ही है, नारी हो, पुरुष हो, संन्यासी हो—अमृत या पीयूष तो अमृत या पीयूष ही हैं। पीयूषत्व-अमृतत्व ही अभेद रूप से पीयूष का गुण है।

* पुराण-कथा है कि समुद्र मंथन किया गया, इस मंथन से रत्न पर रत्न निकलने लगे। विष भी एक रत्न के रूप में निकला और अमृत भी एक रत्न के रूप में निकला। समुद्र का मंथन सुर और असुर दोनों ही तो कर रहे थे ! पर दोनों में मनोगत कोई भेद नहीं प्रतीत होता। विष-रत्न को दोनों में से किसी ने भी ग्रहण

नही करना चाहा, पर अमृत को दोनों ही लेने दौड़े। सत्य स्पष्ट है कि अमृत या पीयूप को सभी चाहते है।

* पीयूष घट में लेखक श्री विजय मुनि शास्त्री ने स्वयं ही महा सागर को मथ डाला है-यह महासागर है कथाओं का महासागर, कथाओं के महासागर को भी मथने पर अनेकों रत्न मिल सकते है, विष भी इस मंथन से निकल सकता है, उसे शिव अथवा कल्याणक परिवेशन के कण्ठ में या मध्य में स्थापित करके छोड़ देना चाहिये। लेखक ने अमृत मथकर निकाला है और इस 'घट' में भर दिया है !

* यह क्षीर सागर है, अरब सागर है, या कोन-सा सागर? नहीं! कहा जा सकता है कि जैन आगमों का कथा सागर है। जैन कथा सागर? वस्तुतः कथा-सागर तो कथा-सागर है तो कोई जैन तू बी में भर ले, कोई बौद्ध तूंबी में भरले, कोई हिन्दू तूंबी मे भरले, कोई मुसलमान तूंबी में भरले, कोई ईसाई भरले! कथा-सागर से लेकर भरी तूंबी में अपने-अपने कथा सागर में कुछ रंग भी मिलाये जा सकते हैं, पर कथा-सागर तो समानरुपेण सब मैं व्याप्त है। अतः कथा सागर का ही अमृतत्व इस घट के पीयूप में है जिससे यह पीयूष घट बना।

* कथा सागर में कथाएँ होती है, अगणित, विविध चित्र विचित्र! कथाओं में नामधारी व्यक्ति पात्र रूप मे आते है। पात्रों के चरित्रों के गुंथने से ही कथा वृत्त बनता है। फलतः अमृत या पीयूष न कथा मे है, न पात्रों में-वरन् इन गुंथे हुए चरित्रो में ही होता हैं। प्रत्येक चरित्र, जिस अमृतत्व को जगमगा कर कथा को चमका देता है, उसी बूंद को मथकर निकाल लेना पड़ा है यह घट भरने के लिए।

* 'तो आपका कहना है कि इसमें जो कथाएं दी गयी है उनमें चरित्र का अमृत है—यानी कोई आदर्श प्रस्तुत किया गया है, यानी कोई शिक्षा, चरित्र से प्रस्तुत की गयी है, यानी कोई उपदेश बीसवी शती के इस तृतीय चरण में यह दसवी और बारहवीं शती की बातें ! क्या हुआ जो आपने इसे सुन्दर शब्दावली में रच कर रखा है, क्या हुआ जो आपने आधुनिक शैली का उपयोग किया है ? क्या हुआ जो आपने मानवता की दुहाई की है, और मनोवैज्ञानिकता की भी शरण ली है। नये वर्तनों में वही पुरानी शराब !'

* शराब ! ठीक है, एक मुनि महराज की रचना जान कर, मार्मिक चोट पहुँचाने के लिए यह उक्ति दी गयी है। सोमिल ब्राह्मण ने यह देखकर कि उसक जामाता होने वाला कृष्ण का भाई गज सुकुमाल तपस्वी बन गया है, उसने उस तरुण तपस्वी के सिर पर गोली मिट्टी से पाल बाँध कर पास ही जलती हुई चिता से लेकर अंगारे भर दिये। "तरुण तपस्वी का मस्तक जल रहा था। चमड़ी, मज्जा मांस सभी जल रहे थे। महा भयंकर महा दारुण वेदना हो रही थी। फिर भी वह तरुण योगी अपनी ध्यान मुद्रा से डिगा नही। मन के किसी भी भाग में न कही पर वैर, न कहीं पर विरोध और न कही पर प्रतिशोध" ! (पृ० १२५-१२६)

* यह है एक मानवीय आदर्श ! आज का नही; कृष्ण-बलदेव के युग का पुराना। यह पुरानी शराब है या सद्य अमृत ! पीयूष कभी पुराना नही होता, सदा सद्य रहता है, सदा नव-नव। नव जीवन, नवोन्मेष, नव-नव प्राणवानता से युक्त। जीवन अनादिकाल से प्रवाहित होता चला आ रहा है, और इसमें ऐसे ही पीयूष रस का परिप्लावन रहता आया है।

* यह पीयूष जीवन का मूल तत्व है; वह बीसवी शती हो या

इक्कीसवीं, जीवन के मूल तत्व से वंचित होकर नही चल सकती। इस पीयूष घट के एक-एक आचमन से आप इतिहास के विविध युगों के संजीवनी तत्वों के सार से तादात्मय कर सकेंगे। एक-एक आचमन से उस मानवीय संजीवन से अनुप्राणित हो सकेंगे। जो न कालों और युगों की सीमाओं को मानता है, न जाति-धर्म की सीमाओं को, न व्यक्ति-व्यक्ति की।

* प्रत्येक कहानी कहानी भी है। लघु कहानी। अतः रोचक—सुधा है माधुरी युक्त! किन्तु संपादक ने प्रत्येक कहानी के साथ एक मार्मिक टिप्पणी भी दी है, उसमें सुधा और माधुरी की मानसिक प्रक्रिया का विश्लेषण कर दिया गया है। ऐसी ही एक टिप्पणी में संपादक ने बताया है कि "आगमों की कहानियाँ पढते-पढ़ते ही एक धारणा सी बन जाती है कि कथानक इस ढंग से समाप्त होगा और वैसा ही होता भी है। और कथानक पढ़ चुकने पर शंका होती है, न कोई घात, न प्रतिघात, न द्वन्द्व, न किसी प्रकार का उतार चढ़ाव। फिर ये क्या कहानियाँ हुई?" (पृ० १३०) तो ऐसी कहानियाँ इस पीयूष घट में है, पर वे किसी न किसी अमृत-तत्व का उद्‌घाटन अवश्य करती है!

* बीसवी शती को वस्तुतः ऐसी कहानियों के अमृत की विशेष आवश्यकता है। क्योंकि इनसे कुछ झाँकियाँ पाकर वह भूत को देख सकेगा; भूत के मानव को देखकर वह मानव की एक ऐतिहासिक परिभाषा बना सकेगा; कहानी से कुछ मनोरंजन भी हो सकेगा, संभवतः उसके अमृत के आचमन का स्वाद आज के दुःस्वाद युग में कुछ सुहाने भी लगे। जीवन की नींव में ही अमृत सिंचन करने की आवश्यकता है। मानव को नैतिक नीव की सदा अपेक्षा रहेगी। फलतः इन कहानियों के पीयूष घट की भी अपेक्षा रहेगी।

—सत्येन्द्र
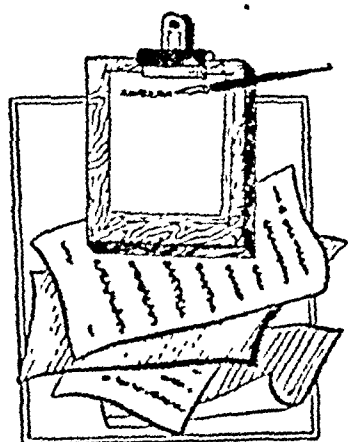
कहानी की कहानी !

कला के क्षेत्र में, कहानी से बढ़ कर अभिव्यक्ति का शायद ही कोई सुन्दर साधन हो। कहानी कला, अपने आप में इतनी परिपूर्ण एवं आकर्षक है कि सब का मन मोह लेती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—घर की बूढ़ी दादी और नानियाँ। जब वे अपनी प्यार भरी गोद में कुसुम-कोमल मन वाले नन्हे मुन्नों को लेकर, दुलार करती हुई उनसे कहती हैं—'आओ लल्ल कहानी सुनो!' तब बालक खेल छोड़ देते हैं, मिठाई छोड़ देते हैं और—गोद में सटके उनसे कोसों दूर भाग जाते हैं! क्योंकि कहानी, उनके मानस को इतना तन्मय कर पकड़ती है कि वे अपनी प्रिय-से-

प्रिय वस्तु को भी भुला देते है! दस काम नानी के कहने पर वे बेमन के भी करने को वे तैयार हो जाते है।

बालकों में कहानी के प्रति आकर्षण होता है इसका अर्थ तो यह हुआ कि वह बच्चों के ही मतलब की चीज है—ऐसी बात नही। बच्चों की स्वच्छ कोमल भावना का कथा गत पात्रों से तादात्य भाव, शीघ्र हो जाता है। वे अपना अस्तित्व भूलाकर कथा मय या पात्र मय हो जाते है। अतः कहानी का उल्लेख करते समय कहानी के प्रति उनकी रुचि का उल्लेख करना आवश्यक है। वादल जब उमड़ घुमड़ कर आते है तो वसुन्धरा की गोद हरी तिमा से भर जाते हैं। और जब भावों के मेघ उमड़ घुमड़ कर आते है तो कहानी-कला के अनूठे शिल्प द्वारा हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने वाले चित्रो में प्राणों का संचार कर जाते हैं।

मानव में सवेदन शीलता शास्वत भाव है। वह जब कहानी पढ़ता या सुनता है तो कथागत पात्र के सुख-दु ख में अपने आपको साझीदार समझने लगता है। अतः कहानी गत पात्रों के घात प्रतिघातो से पाठक का दिली लगाव हो जाता है—अज्ञात भावेन ही। वह अनुभव करने लगता है कि यह सुख-दुःख मुझे ही हो रहा है। मनुष्य ऐसा अनुभव इसीलिए करता है, कि मानव वेदना की सनातन अभिव्यक्ति कहानी के कण-कण में रमी रहती है।

वैसे बड़े-वड़े मत प्रवंतकों ने भी कहानी, रूपक, दृष्टान्त एवं उदाहरणों द्वारा धार्मिक भावनाओं का जन मानस पर स्थायी प्रभाव डाला है, बहुत सम्भव है कि दर्शन शास्त्र की शुष्क बातों से वह न पड़ा हो। बौद्ध साहित्य की "जातक" कथाओं की ६ जिल्दों मे बुद्ध के पूर्व भवों की झांकी है। इसी प्रकार वैदिक

साहित्य और जैन साहित्य में भी पर्याप्त कथाएं हैं। जैन साहित्योदधि से एक नही अनेको घट भर कर रखे जा सकते है। परन्तु सम्प्रति यह छोटा घट ही प्रस्तुत है।

'कहानी की कहानी' कहते हुए यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है, कि टीकाओं, चूर्णियो, भाष्यों, निर्युक्तियों एव आगम उदधि से एक-एक बूंद लेकर यह 'पीयूप घट' भरा है। यह घट कितनी शीघ्रता मे भर गया! यह मत पूछिये! मेरे परम स्नेही मुनि कन्हैयालाल जी 'कमल' ने मुझे वार-वार उकसा-उकसा कर, प्रोत्साहित कर-कर —कहानियाँ लिखने को वाद्य किया था। उन्होंने कहानियाँ लिखवाना प्रारम्भ करवाई और फिर इन्हें सराही भी खूब ही। मैं समझता रहा, कहानी लिखवाने के लिए ही मुझे और मेरी कहानियो को सराह रहे है। परन्तु जव आगम साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान प० श्री वेचरदास जी दोशी एवं दार्शनिक, विद्वान प० श्री दलसुख भाई मालवाड़िया तथा 'जैन दर्शन' जैसे ठोस ग्रन्थ के अकेले एक लेखक डा० श्री मोहनलालजी मेहता, इन्द्र प्रस्थीय डा० इन्द्रचन्द्र जी पी० एच० डी० ने व विश्व धर्म और विश्व मानव के अमर गायक और प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार जी आदि विद्वानो ने इन कहानियों को पसन्द किया और अधिकाधिक लिखने के लिए उत्प्रेरित किया तो मैं समझा, कहानियां कुछ काम की ही साबित होंगी। जव मुझे कहानी और रूपक भी लिखने में रस आया तो वे दिन याद हैं—भूख प्यास सब भाग गई थी, आठ-आठ घन्टे जम कर वैठता था तब लेखनी निरन्तर आगे-ही-आगे चलती रहती थी—कागज के सीनों पर सर पट!

कहानी लिखने में जब-जब मेरी गति धीमी पड़ी तब-तब मित्र मुनि मधुकर जी की मधुर प्रेरणा तथा मेरे अभिन्न हृदय प०

श्री मल्ल जी की बलवान् प्रेरणा मेरे हाथों की गति को बढा-बढा दिया करती थी। इन्ही साथियों की यह पावन प्रेरणा का मधुर परिणाम 'पीयूष घट' है। ३०० कहानियाँ लिखवा लेना इन्ही स्नेहियों का काम है। अन्यथा मुझ जैसा अलस व्यक्ति क्या लिखता! इन साथियों मे काम करने की आग है! इन की आत्मा की जडे निष्ठा के पानी से सिंचित है। यही कारण है कि उत्साह की खाद दे-देकर मुझ से इन्होने ये कहानियाँ लिखवा ली!

'कहानी की कहानी' का यह पूर्वाध हुआ उत्तरार्ध यों है— ये कहानियाँ कहानी कला की दृष्टि से पूर्ण है या नही इसका दावा मैं तो कैसे कर सकता हूँ लेकिन धर्म, दर्शन, इतिहास, सस्कृति साहित्य और समाज—विषय के पाठक इस से रस ग्रहण कर सकेगे —ऐसा मैं विश्वास लेकर चल रहा हूँ। भारतीय सस्कृति के सगीत के स्वरों को इन कहानी में रहे तथ्यों से गति मिलेगी, लय मिलेगी, ताल मिलेगी और मिलेगा वह सब कुछ जो आज के शस्त्रात्मक सहार युग से ऊबे मानव मे एक खास तरह की दिलीतमन्ना अन्दर-ही-अन्दर फड़ फड़ा रही है —उसे राहत! एक बात और जिसके विषय में मौन रहना Sin of omission होगा। मनुष्य का Sin of comission सेबचना सरल है, परन्तु Sin of omission से बचना दुष्कर है। 'पीयूष-घट' की सजावट, जगमगाहट और साज-सज्जा श्रीसुबोध मुनि जी की है। वे प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक है। सम्पादन सुन्दर एवं सजीव है! वह मुझे भाया! उसने मेरा मन मोहा!! आँखें ठहरा ली!! और दिल जीत लिया!!! पाठकों को भी वह पसन्द आएगा ही। इसी विश्वास के साथ विराम!

माता रुकमणी भवन,
जैन स्थानक, कानपुर.
२०—९—६० ई०

—विजय मुनि

पीयूष घट

नारी का मन

"नारी का मन"

इस विभाग में नारी के मन का बहाव यद्यपि एक ही दिशा मे बह रहा है फिर भी विभिन्न परिस्थितियों के घात-प्रतिघातों ने उसे किस ओर मोड़ना चाहा है और अन्त में वह किस ओर मुड़ती रही है अतीत से आज तक! इस का अध्ययन आप इस विभाग में कीजिए और आज के युग को नाप देखिए वह अपने व्रत, प्रतिज्ञा, निष्ठा और कुल-शील के लिए किस प्रकार अपने जीवन की सांसों को तिल-तिल घुला रही है!
इस दिशा में राजमती के अध्यात्म जागरण को हम यहां सबसे पहले प्रस्तुत कर रहे हैं!

संपादक

भूला राही राह पर !

यादव जाति के तरुण सुरा और सुन्दरी में आकण्ठ डूब गये थे—अपना मान भूल गए थे। मांस को उन्होंने स्वादु और विशिष्ट भोजन मान लिया था। राजकुमार नेमि का विवाह था। बारात के स्वागत में मांस भोजन का आयोजन था। मृग शशे, कुकुट्ट आदि असहाय पशुओं की चीत्कारों ने नेमि के हृदय में करुणा का तीव्र आन्दोलन उत्पन्न कर दिया। राजकुमार नेमि ने दया द्रवित हो राजकुमारी राजमती का परित्याग कर अपने जाति बन्धुओं के समक्ष एक महान् आदर्श उपस्थित किया।

....

नेमि के प्रव्रजित हो जाने पर रथनेमि ने राजमती से विवाह करने की इच्छा अभिव्यक्त की थी। राजमती ने सोचा ! एक को हृदय समर्पित कर चुकी। अब दूसरी जगह कैसे दिया जा सकता है ? हृदय तो एक ही है और वह मैंने नेमि को दे दिया। राजुल बुद्धिमती थी। रथनेमि का वासना वेग शान्त करने का एक उपाय खोज निकाला। एक दिन उसने विभिन्न प्रकार के मिष्ठान्न खाए, और नाना प्रकार के पेय पदार्थ पिए। रथ नेमि के आगमन के साथ ही मदन फल खाकर उसने वमन कर दिया। रथनेमि इस नाटक को समझ नहीं सका। राजमती ने वान्त पात्र को रथनेमि के समक्ष रखकर विनीत भाव से कहा : "लीजिए, पान कीजिए, इसका !"

"क्या यह पीने के योग्य है ? " नाक सिकोड़कर तिरस्कार

की भाषा में रथनेमि ने राजमती से कहा !

"क्यों, क्यों नहीं । जबकि ग्राप, अपने लघु भ्राता नेमिनाथ के द्वारा परित्यक्ता राजकुमारी को परिगृहीता करना चाहते है ! तो यह वान्त पात्र का पदार्थ पान नही है ?"

रथनेमि की विचार-धारा बदली, वह आभ्यन्तर निन्द्रा से जागृत हुआ और आत्म-साधक श्रमण वन गया । नेमि के विना राजुल को दुनिया सूनी थी ! वह भी परिव्राजिका होकर अपने मनोनीति आराध्य के पथ पर चल पड़ी । मन को मोड़ने की देर है, जीवन की दिशा बदलने में फिर विलम्ब ही क्या ?

◎ ....

वर्षा की सुहावनी वेला थी । राजुल, भगवान् नेमिनाथ के दर्शन कर गिरनार से नीचे उतर रही थी । उतरते वर्षा हुई ! वर्षा में भीगे वस्त्रों को सुखाने के लिए उसने एक समीपस्थ गुफा में प्रवेश किया । वस्त्रों को इधर-उधर फैला दिया । निर्जन एकान्त स्थान जानकर, निर्वस्त्रा होकर वह वहाँ वैठ गई ।

परन्तु उसी गुफा में श्रमण रथनेमि भी ध्यान मुद्रा में खड़ा था । राजुल को देखकर उसकी प्रसुप्त वासना जागृत हो गई । हृदय-मथन चला, पर मन थक गया था । वह हारा मन शीतल छाया में सुख खोज रहा था । नारी के रूप से योगी का योग हार चुका था । वह राजुल से भोग की भाषा में बोला :

"उठो, राजुल ! तुम्हारा यह सौकुमार्य योग के लिए नही, भोग के लिए है । आओ चलो, संसार में चलें । संसार कितना मधुर है ? ओफ......! और यह दम तोड़ देने वाली योग साधना कितनी कठोर है ?"

राजमती का सतीत्व सजग और सतेज होकर वोल उठा :

"धीरत्थु ! ते जसो कामी,
जो त जीविय कारणा ?"

"रथनेमि, तुम्हे धिक्कार है ! श्रेयस का परित्याग करके तुम प्रेयस को अंगीकार करना चाहते हो। इस अपयश से तो तुम्हारा मरण ही अधिक श्रेष्ठ है। जरा सोचो, समझो, तुम कौन हो ? और मै कौन हूँ ? तुम समुद्रविजय के पुत्र हो, और मैं उग्रसेन की कन्या हूँ। नेमि, वासना की दृष्टि आत्म-हनन की दृष्टि है। यह तुम्हें पद-पद पर तृण की तरह अस्थिर कर देगी।"

राजमती के सुभाषित अंकुश से काम-मत्त गजेन्द्र रथनेमि सन्मार्ग पर आ गया। रथनेमि का वासना वेग शान्त रस में परिणत हो गया। भूला राही फिर राह पर चल पड़ा।

—दशवै० २, गा० ६, टीका ⊛

कहानीकार कहना चाहता है : नारी पुरुष की शक्ति है। शक्ति से साहस का सञ्चार होता है। प्रियवदा राजुल की वचन शक्ति ने, रथनेमि (पुरुष) के थके मन को साधना पथ पर चलने की शक्ति व बल प्रदान किया। जो थका मन आराम के लिए अधीर था, वह और नये उत्साह से अपने साधना पथ पर अग्रपद हो गया। —सं०

नारी नर से आगे !

विदेह देश की राजधानी
मिथिला नगरी में,
कुम्भराजा राज्य करता था। प्रभावती उसकी रानी थी। मल्लदिन्न राजकुमार था, और मल्ली राजकुमारी थी। राजकुमारी मल्ली का रूप, लावण्य और सौन्दर्य अद्भुत था। देव उसके रूप से ईर्ष्या करते थे। राजकुमारी ने अपने सुन्दर संस्कारों के कारण आजीवन कौमार्य व्रत का संकल्प कर लिया था। ब्रह्मचर्य की साधना में वह सदा सजग रहती थी।

उस समय कोशल के प्रतिबुद्ध राजा ने, अंग के चन्द्रछाय राजा ने, काशी के शंख राजा ने, कुणाल के रूपी राजा ने, कुरु के अदीन शत्रु राजा ने और पंचाल के जितशत्रु राजा ने राज कुमारी मल्ली के रूप, लावण्य और सौन्दर्य की कथा सुनी तो वे उसे प्राप्त करने लिए विकल हो उठे। सब ने अपना-अपना सन्देश राजा कुम्भ के पास भेजा। राजा कुम्भ ने सबको इन्कार कर दिया, क्योकि राजा को यह विश्वास था कि मल्ली विवाह करने को तैयार नही है।

स्वार्थान्ध पुरुष नारी के भावों का मूल्यांकन नही कर सकता। वह तो न्याय और अन्याय से अपना स्वार्थ साधना ही चाहता है। राजाओं ने रूप सुन्दरी मल्ली को प्राप्त करने के लिए कुम्भ पर आक्रमण कर दिया। कुम्भ में इतनी शक्ति नही थी, कि वह सबसे टक्कर ले सके। युद्ध हुआ, राजा कुम्भ के जीतने की कोई आशा ही नही थी, वह पराजित हुआ।

सौन्दर्य, द्रष्टा को सुख देता है। पर पुष्प को कोई मसलने लगे तो......?

राजकुमारी बुद्धिमती थी। उसने स्थिति को समझा और उलझन को सुलझाने का प्रयत्न करने का संकल्प किया। मल्ली ने अपने महल में अपनी एक सुवर्ण की मूर्ति बनवाई और उसे सुगन्धित खाद्य द्रव्यों से भरकर आवृत्त कर दी। छहों राजाओं को महल में आने का निमन्त्रण दे दिया। मल्ली की मूर्ति इतनी सुन्दर थी, कि राजाओं ने देखकर उसे ही मल्ली समझा। मूर्ति का अनावरण किया तो उसमें से तीव्र दुर्गन्ध उछली, वह सभी राजाओं को असह्य हो गई।

राजकुमारी ने अवसर को पहचानकर विनम्र शब्दों में राजाओं से कहा : "इस मूर्ति को देखकर आप मुग्ध हो गये थे। परन्तु मूर्ति में से जो दुर्गन्ध निकल रही है, उससे घबराते हो। बन्धुओं, मेरे इस शरीर की—जिस पर आज आप सब अत्यन्त मुग्ध हो, युद्ध करने को भी तैयार होकर आए हो—यही स्थिति है। जरा ज्ञान नेत्रों से देखो। इस चर्मावृत्त शरीर में रुधिर, मांस, मज्जा और अस्थि के सिवा और है ही क्या? मल, मूत्र, और श्लेष्म की दुर्गन्ध इसमें भी भरी हुई है। फिर इस पर इतनी आसक्ति?"

C ....

शक्ति से जो कार्य नहीं होता, वह बुद्धि से सहज ही हो जाता है। सब राजाओं ने कुम्भ से अपने अपराधों की क्षमा माँगी और बड़े स्नेह से सब अपने-अपने देश को विदा हो गए।

कालान्तर में राजकुमारी मल्ली प्रव्रजित हो गई, तो राजाओं ने भी दीक्षा अङ्गीकार करके मल्ली के पथ का ही अनुगमन किया। मल्ली नारी थी, परन्तु उसने मनुष्य समाज का

समुत्कर्ष के लिए जो किया, वह आज भी पवित्र और स्मरणीय है। और अन्त में वह अपनी साधना से तीर्थंकर बनी।

—ज्ञाता० अ० ६।८

नारी, जब जो चाहे कर सकती है। पर कभी पुरुष की कठोरता से उसका अन्तर्हृदय पिघल जाता हे तो वह अपने को तुच्छ समझने लगती है ! मै अबला हूँ, इस परिकल्पना मे निश्वासे निकाल कर नारीत्व के अस्तित्व से भी इन्कार करने लग जाती है। मल्ली ने वही किया, वही करवाया जो उसने चाहा। नारी कभी नर से पीछे नही रही। आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी उसने तीर्थंकर जैसे महान् पद को प्राप्त कर लिया।

—सं०

उसने वात्सल्य को जन-जन में खोजा !

माता का पुत्र पर सहज स्नेह होता है। वह स्वयं क्लेश उठा सकती है, परन्तु पुत्र को सुख देने के लिए वह प्रत्येक प्रयत्न करने को तैयार है। पुत्र का अमंगल माता सह नही सकती।

राजगृह मे राजा श्रेणिक राज्य करता था। रानी काली, सुन्दरी, रूपवती और बुद्धिमती थी। श्रेणिक को वह रानी सर्व प्रकार से प्रिया थी, इष्टा और वल्लभा थी। कालीकुमार इसी का पुत्र था, जो सुन्दर और सुकोमल था। काली रानी को वह प्राणों से भी अधिक प्रिय था।

o.... ... . ..

राजा श्रेणिक के बाद कोणिक ने अपनी राजधानी चम्पा को बनाया था। रानी काली और कालीकुमार भी चम्पा नगरी मे रहने लगे। मगध और अंग दोनों पर श्रेणिक का राज्य था। श्रेणिक ने अपने जीवन काल मे ही मगध और अग के ग्यारह विभाग कर दिए थे, जिससे पुत्रो में किसी प्रकार का संघर्ष न हो।

o.. .. . .

उस युग मे मगध और अग दोनो विशाल देश थे। मगध की राजधानी राजगृही थी और अग की राजधानी चम्पा नगरी थी। कोणिक ने राजगृही को छोड़कर चम्पा को अपनी राजधानी बनायी थी। कोणिक और कालीकुमार मे अत्यन्त स्नेह और सद्भाव रहता था।

o .

समुत्कर्ष के लिए जो किया, वह आज भी पवित्र और स्मरणीय है। और अन्त में वह अपनी साधना से तीर्थंकर बनी।

—ज्ञाता० अ० ६।८

नारी, जब जो चाहे कर सकती है। पर कभी पुरुष की कठोरता से उसका अन्तर्हृदय पिघल जाता है तो वह अपने को तुच्छ समझने लगती है! मैं अबला हूँ, इस परिकल्पना मे निश्वासे निकाल कर नारीत्व के अस्तित्व से भी इन्कार करने लग जाती है। मल्ली ने वही किया, वही करवाया जो उसने चाहा। नारी कभी नर से पीछे नही रही। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उसने तीर्थंकर जैसे महान् पद को प्राप्त कर लिया।

—सं०

उसने वात्सल्य को जन-जन में खोजा !

माता का पुत्र पर सहज स्नेह होता है। वह स्वयं क्लेश उठा सकती है, परन्तु पुत्र को सुख देने के लिए वह प्रत्येक प्रयत्न करने को तैयार है। पुत्र का अमंगल माता सह नही सकती।

राजगृह में राजा श्रेणिक राज्य करता था। रानी काली, सुन्दरी, रूपवती और बुद्धिमती थी। श्रेणिक को वह रानी सर्व प्रकार से प्रिया थी, इष्टा और वल्लभा थी। कालीकुमार इसी का पुत्र था, जो सुन्दर और सुकोमल था। काली रानी को वह प्राणों से भी अधिक प्रिय था।

◎...... ......

राजा श्रेणिक के वाद कोणिक ने अपनी राजधानी चम्पा को वनाया था। रानी काली और कालीकुमार भी चम्पा नगरी मे रहने लगे। मगध और अंग दोनो पर श्रेणिक का राज्य था। श्रेणिक ने अपने जीवन काल मे ही मगध और अंग के ग्यारह विभाग कर दिए थे, जिससे पुत्रों मे किसी प्रकार का संघर्ष न हो।

◎... ....

उस युग में मगध और अंग दोनों विशाल देश थे। मगध की राजधानी राजगृही थी और अग की राजधानी चम्पा नगरी थी। कोणिक ने राजगृही को छोडकर चम्पा को अपनी राजधानी वनायी थी। कोणिक और कालीकुमार में अत्यन्त स्नेह और सद्भाव रहता था।

◎... ... .

विहल्लकुमार और वेहासकुमार कोरिणक के सहोदर भाई थे। राजा श्रेरिणक ने विहल्लकुमार को सिचानक गन्ध हस्ती और वंक हार दिया था। वह अपना हार पहन कर हाथी पर सवार हो, रोज बाजार में से निकलता। एक बार कोरिणक की रानी पदमावती को विहल्लकुमार की इस शान शौकत ने ईर्ष्या-दग्ध कर दिया। रानी ने कोरिणक को हार-हाथी छीन लेने के लिए बाध्य कर दिया। विहल्लकुमार अपनी रक्षा के लिए अपने नाना चेटक के पास पहुँच गया। वह विशाला नगरी का अधिपति था। चेटक ने विहल्लकुमार एवं हार और हाथी की रक्षा का दृढ़ संकल्प कर लिया था। कोरिणक और चेटक में भयकर युद्ध हुआ। इस भीषरण एवं दारुरण युद्ध में कालीकुमार कोरिणक की ओर से युद्ध में गया था। संसार का इतिहास कहता है—युद्ध के तीन काररण है—"धन, राज्य और नारी।" स्वार्थ ने भाई-भाई में भेद की दीवार खड़ी कर दी।

◎...............

एक बार भगवान् महावीर चम्पा नगरी पधारे। नगर के बाहर उपवन में परिषदा लगी। रानी काली, भगवान् के दर्शन और वन्दन को आई। परिषदा के लौट जाने पर काली रानी ने वन्दना करके भगवान् से पूछा :

"भंते, क्या मैं अपने कालीकुमार को देख सकूंगी? वह अब कहाँ पर है?" काली ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से भगवान् की ओर देखा।

भगवान् ने यथार्थवाद उसके सामने रखा : "काली, अब तू कालीकुमार को नही देख सकेगी। वह युद्ध में राजा चेटक के तीव्र प्रहार से मर गया है, और अब वह पंक प्रभा में नारक बन चुका है।"

काली रानी का संसार कालीकुमार के विना सूना हो चुका था। राजमहल में अब उसका मन नहीं लगता। सब राग-रंग फीके लगने लगे। काली के मन ने मोड़ लिया : "जिस संसार में मेरा पुत्र नहीं रहा, वहाँ मैं भी नहीं रहूँगी।" कोणिक से अनुमति लेकर वह श्रमणी बन गई।

चन्दन बाला की सेवा में रहकर काली ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। संयम और तप की कठोर साधना से अपने जीवन को साध लिया। काली रानी जितनी कोमल थी, साधना में उतनी कठोर भी रही। नारी में आसक्ति भी अत्यन्त है, और त्याग भी अद्‌भुत तथा अनुपम है। काली ने गुरणी की आज्ञा से रत्नावली तप की एकाग्रता से साधना की और अन्त में सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गयी।

—निरयावलिया अ० १, अन्त कृ० वर्ग ८, स० १|⊗

नारी को नागिन कौन कहता है? पुत्र स्नेह के लिए वह मरती है, उसी के लिए जीती है। स्नेह को नारी से कोई छीन नहीं सकता। पुत्र स्नेह पाकर वह सुखी है। उतनी जितनी योगी को अपने योग साधन में सुख मिलता है। अत: काली ने अपने वात्सल्य को जन-जन में खोजा था।

—सं०

बुद्धि का कौशल !

◎————————

धन होने पर भी यदि
बुद्धि नही है, तो जीवन
सुखी नही रह सकता । जीवन के हर क्षेत्र में बुद्धि की आवश्यकता है। बिना बुद्धि के जीवन सूना-सूना रहता है।

राजगृह नगर में एक बुद्धिमान धन्य सार्थवाह रहता था। उसकी पत्नी का नाम था, भद्रा। सार्थवाह के चार पुत्र थे—धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित। उन चारों पुत्रों के क्रमशः चार पत्नियाँ थी। उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी। चारों पुत्र और उनकी चारों पत्नियाँ अपने-अपने कार्य मे दक्ष थी। धन्य और भद्रा सुखी थे।

◎.........

एक दिन धन्य सार्थवाह ने सोचा . "मैं अब तो वृद्धत्व की ओर अग्रसर हूँ। जीवन का पता ही क्या ? यह दीपक कब बुझ जाय, कौन जाने। कार्यवशात् कभी घर से बाहर भी जाना पड़ जाय ! अभी तो भद्रा भी है, चिन्ता जैसी स्थिति भी नही है। परन्तु हमारे वाद क्या होगा ? पुरुष का क्षेत्र घर के बाहर का है। घर का कार्य तो नारी के हाथों में सुरक्षित रह सकता है। इन चारों पुत्र वधुओ मे कौन घर को सभालने मे दक्ष और योग्य है। यह परीक्षा मुझे कर लेनी चाहिए।"

सार्थवाह ने अपने समस्त परिजनो को और ज्ञातिजनो को बुलाकर एक प्रीति भोज किया और उस अवसर पर सब के समक्ष अपनी चारो पुत्र वधुओं के हाथ मे पाच पांच चावल के

दाने देकर कहा : "इन्हें संभालकर रखना और जब मैं मांगू, तब मुझे लाकर दे देना।"

पहली पुत्र वधू, उज्झिका ने विचार किया : "इस समृद्ध घर मे चावलों की क्या कमी है?" उसने वे दाने फेंक दिए।

दूसरी ने विचार किया : "ये दाने ससुरजी ने दिए हैं। फेंकने योग्य नही है।" उसने खा लिए।

तीसरी ने उन दानो को रेशमी कपड़े में बांधकर रत्न करण्डिका में रख छोडे और सोचा : "जब मागेगे, तब दे दूंगी।"

चौथी ने विचारा : "ससुर जी बुद्धिमान् है, पांच दाने देने मे कोई विशेष प्रयोजन होना चाहिए।" रोहिणी ने वे पांच चावल के दाने अपने पितृगृह भेज दिए बोने के लिए। पाच वर्ष में दानों से कोठे के कोठे भर गए।

पांच वर्ष के बाद ससुर ने फिर अपने परिजनों और ज्ञातिजनों के समक्ष प्रीति भोज किया और उनके समक्ष अपने दिए हुए पांच-पांच चावल के दाने मांगे। उज्झिका ने कहा : "वे मैंने फेंक दिए थे, ये नये दाने लीजिए।"

भोगवती ने कहा : "मैंने खा लिए थे, नये कहो तो ला दूं।" रक्षिता ने वे सुरक्षित लौटा कर कहा : "लीजिए"।

रोहिणी ने कहा : "उन्हे लाने के लिए गाड़ियां चाहिए, आदमी उन्हे नही ला सकता।धन्य सार्थवाह रोहिणी की बात से अत्यन्त प्रसन्न हुए और सब के सामने कहा :

"आज से मैं अपने घर का सारा भार रोहिणी को सौपता हूँ। रक्षिका को मैं सम्पत्ति रक्षा का दायित्व देता हूँ। भोगवती को रसोईघर की व्यवस्था देता हूँ। उज्झिका को मैं घर की सफाई के लिए नियुक्त करता हूँ।"

मनुष्य की कीमत बुद्धि से आंकी जाती है। रोहिणी सबसे छोटी होती हुई भी अपने बुद्धिबल से सबके ऊपर हो गई।

ज्ञाता० अ० ७/⊗

किसको क्या दायित्व सौंपा जाए ? आज के परिवार, समाज और अन्य क्षेत्रो में यह समस्या व्यापक है। लेखक ने जैन शास्त्रो मे से इस समस्या का समाधान प्रस्तुत कहानी में किया है। लेखक कहना चाहता है कि कहानी मे वर्णित बुद्धि-कौशल उन-उन क्षेत्रो मे प्रकाश-स्तम्भ बनकर खडा हो जाए तो कितना अच्छा हो ?

—सं०

नारी की अभिलाषा !

स्वर्ग नगरी द्वारिका के राज प्रासादों में देवकी अपने विचारों में डूबी सोच रही थी। मानस मंथन चल रहा था। वह देख रही थी—सोच रही थी : "आज, आज तो महल सूना-सा लगता है। शान्ति में सुख है, कोलाहल नही ! द्वन्द नही ! पर बालक की किलकारी कहाँ है यहाँ।" उसके चिन्तन ने मोड़ लिया :

"मैं कितनी पुण्य हीना हूँ ? कितनी मन्द भाग्या हूँ। सात-सात पुत्रों को जन्म देकर भी मैं एक को भी लाड़ प्यार नही कर सकी ! खिला-पिला नही सकी ! स्तनपान नही करा सकी ! गोद में लेकर दुलार नहीं कर सकी ! छह पुत्र सुलसा के यहाँ भले गए, पर कृष्ण को भी कंस से बचाने को नन्द के यहाँ भेजना पड़ा। मैं कैसी माता हूँ ? छह दीक्षा ले गए, अब वह लौटने वाले नहीं, कृष्ण भी अब राजनीति में उलझा रहने से कभी-कभी ही मेरे पास आता है। हाय नारी का भाग्य......!"

कृष्ण, आज माता देवकी के चरण वन्दन करने आया था। परन्तु माता की उदासी और खिन्नता वह देख नही सका। पुत्र माता के दुःख को सह नही सकता। उदासी का कारण समझा तो कृष्ण ने कहा :

"माँ ! तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारी अभिलाषा पूरी होगी। मेरा आठवां भाई होगा। उसका तुम लाड़-प्यार और दुलार करना।"

तेला करके कृष्ण ने हरिण गमेषी देव की आराधना की। प्रसन्न होकर देव ने कहा :

"मैं आपका यह कार्य कर सकता हूँ। पर एक शर्त के साथ ! देवकी के पुत्र अवश्य होगा, परन्तु तरुण होने पर वह दीक्षा लेगा।"

बुद्धिमान वर्तमान को साधते हैं। भविष्य की चिन्ता नही करते। ठीक समय पर देवकी ने एक सुन्दर, सुकुमार और कान्त पुत्र को जन्म दिया। जीवन की साध पूरी हुई। गज-तालु के समान सुकोमल होने से उसका नाम गजसुकुमार रखा गया।

—अन्त० व० ३ अ० ८।७

नारी मे माँ बनने की शाश्वत भूख है, परन्तु पुत्र का हंसता मुखड़ा उसके सामने न हो तो उसका हृदय चीत्कार कर उठता है। पुत्र का स्नेह पाने को वह सतत तृषित है। यह हजारो वर्ष के इतिहास से सिद्ध है।

—सं०

सुभद्रा जीत गई!

चम्पा नगरी में जिनदत्त श्रावक की एक रूपवती एवं गुणवती सुपुत्री थी। नाम था, सुभद्रा। सुभद्रा अपने सद्‌गुणों से आस-पास प्रसिद्ध थी। सुभद्रा जैन थी, और जैन-धर्म मे उसे प्रगाढ़ अनुराग था। पिता का संकल्प था, सुभद्रा का विवाह उसी युवा से होगा जो जैन-धर्म में अनुरक्त होगा।

एक बौद्ध युवक ने सुभद्रा के अनुपम रूप को देखा, और मुग्ध हो गया। सुभद्रा की सहज सुषुमा ने और उसके स्वाभाविक सद्‌गुणों ने बौद्ध युवक को जैन बनने के लिए मौन प्रेरणा दी। एक आचार्य की सेवा में उपस्थित होकर उसने पांच अणुव्रत अंगीकार कर लिए वह जैन-साधना मे इतना सजग था, कि अल्प काल मे ही वह प्रसिद्ध श्रावक बन गया।

सुभद्रा के पिता ने उसे जैन-धर्म में अनुरक्त समझकर सुभद्रा का विवाह उस युवा के साथ कर दिया। परन्तु सास और ननद सब बौद्ध थे। वे सब सुभद्रा से द्वेष करने लगे, और उसे बौद्ध बनाने का षड्यन्त्र भी करने लगे। सुभद्रा अपने धर्म में सदा सजग और सतेज रही। वह अपने धर्म का पालन करती रही। विद्वेषी मनुष्य सदा दोष ही देखा करता है।

एक वार एक जिन-कल्पी श्रमण नगर में आये। मेघ गर्जन पर मयूर चुप नही बैठ सकता। सुभद्रा के मानस में आज अपार हर्ष था। वह संकल्प कर रही थी, "साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता

हि साधवः।" सुभद्रा की साध आज वर्षों के बाद पूरी हुई थी।

सुभद्रा ने सद्गुरु को वन्दन किया और सुख-शान्ति पूछी। सुभद्रा की आँखों से यह छुपा न रह सका कि मुनि की एक आँख मे तिनका पड़ा है। सती सुभद्रा ने अपनी जीभ से तिनका निकालने का सत्प्रयत्न किया तो सुभद्रा के तिलक का सिन्दूर मुनि के भाल पर भी लग गया। सास और ननद ने सती को कलंक लगाने का अवसर हाथ से नही खोया। सुभद्रा का पति भी सती पर सन्देह करने लगा और वह घर वालों के दूषित प्रचार से प्रभावित होकर बौद्ध बन गया।

सुभद्रा को अपनी चिन्ता नहीं थी, परन्तु अपने धर्म के अपमान की अधिक चिन्ता थी। सच्चा धार्मिक कभी भी अपने धर्म और संस्कृति का तिरस्कार नही सह सकता। जहाँ अपना घर समझ कर सुभद्रा आई भी, वहीं उस पर सन्देह हुआ। उसे सबने अपने सतीत्व की परीक्षा देने को कहा।

◎........ ... .

सती सुभद्रा ने नगर के बन्द द्वारों को खोलकर और छलनी में नीर भरकर अपने सतीत्व का प्रबल प्रमाण उपस्थित करके नगर-जनों की श्रद्धा पुनः प्राप्त की, धर्म-विमुख पति को पुनः धर्मोन्मुख किया, अपने सास, ससुर और ननद को जैन-धर्म में अनुरक्त किया और अपने धर्ममय गौरव को बढ़ाया।

> भारतीय नारी का नारीत्व है—त्याग, तपस्या और सेवा। नारी अपना सब कुछ देकर भी अपना धर्ममय गौरव अक्षुण्ण रखने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करती रही है। धर्म-रक्षा मे सतेज होकर रहना तथा सेवा मे सदा सजग होकर चलना—वस्तुतः यही नारी का समुज्जवल आदर्श है। —सं०

वात्सल्य दूध बन कर स्तन से फूट पड़ा !

एक बार भगवान् नेमिनाथ द्वारिका नगरी पधारे। भगवान् के भिक्षु संघ में छह भिक्षु एक जैसे थे। रूप में,
रंग में और वय में तुल्य थे। वे छह के छह सहोदर भ्राता थे। सुन्दर, दर्शनीय और कान्त। उनके शरीर के अवयव कमल से भी कोमल थे। देखने वालों को विस्मय होता था ये भोग की वय मे योगी और तपस्वी क्यों बन गए ? उन्हे बेला-बेला पारणा करते देख लोगों को आश्चर्य होता था।

पारणे का दिन था। छहों ने दो-दो की टोली बनाकर भगवान् से पारणा लाने की आज्ञा लेकर द्वारिका में प्रवेश किया। गरीब और अमीर, महल और झोपड़ी—सभी में सर्वत्र वे अपनी विधि से भक्त-पान की गवेषणा करते-करते देवकी रानी के महल मे क्रमशः कुछ समय के अन्तर के साथ जाते रहे। देवकी ने हर्ष के साथ विधिवत् उन्हे मोदकों का उदारता से दान दिया। एक वार, दो वार और फिर तीसरी वार भी दान करने मे देवकी को हर्ष था, उल्लास था। परन्तु एक चिन्ता भी उत्पन्न हो गई। सोचने लगी :

"क्या कारण है, इस विशाल नगरी मे जहाँ कृष्ण वासुदेव राज्य करता है, जहाँ बड़े-बड़े सेठ साहूकार रहते है, वहाँ भिक्षुओं को भिक्षा नही मिलती ?"

भिक्षुओं का समान वर्ण, समान रूप, समान आकृति और समान वय होने से देवकी रानी को उनकी भिन्नता का परिबोध न हो सका।

भिक्षुओं की तीसरी टोली से देवकी ने जिज्ञासा भाव से विनम्र शब्दों मे पूछा :

"भंते, विशाल द्वारिका में अन्यत्र भिक्षा सुलभ नहीं है ? आपको बार-बार (तीन-तीन बार) मेरे यहाँ पर आने का कष्ट करना पड़ रहा है ?"

भिक्षुओं ने शान्त भाव से कहा :

"देवानुप्रिय, हम सब एक ही नहीं हैं। अलग-अलग हैं। जो पहले आये, वे हम नही ! दूसरे आये, वे पहले नही। पहले वाले पहली ही बार आए है, तीसरी बार नही। वैसे हम छहों भगवान् नेमिनाथ के शिष्य है। भद्दिलपुर नगर के नाग गाथापति हमारे पिता हैं।

देवकी ने यह सुना तो अतीत की एक मधुर स्मृति ताजा हो गई। सोचने लगी :

"एक बार पोलासपुर नगर में अतिमुक्त श्रमण ने मुझ से कहा था : देवकी, तू नल कुबेर जैसे सुन्दर, दर्शनीय और कान्त आठ पुत्रों को जन्म देगी। भरत क्षेत्र मे अन्य किसी माता को इतने सुन्दर पुत्रों को जन्म देने का सौभाग्य नही मिलेगा। तो क्या, मुनि की वह वाणी मिथ्या है ? मैं भगवान् से पूछूंगी। इन छहों पुत्रों को जन्म देने वाली माता धन्य है। कितने सुन्दर-सुकोमल पुत्र हैं ?"

◎·· ·············

देवकी अपने सुन्दर रथ में बैठकर भगवान् के दर्शन को गई। भगवान् ने कहा : "देवकी, तेरे मन में यह शंका है ? पर, देवकी यह शंका उचित नहीं है।" भगवान् ने आगे कहा :

"भद्दिलपुर के नाग गाथा पति की पत्नी सुलसा मृत वन्ध्या थी। उसने हरिण गमेषी देव की भक्ति की थी। देव प्रसन्न

हो गया। देवकी, तुम और सुलसा एक साथ गर्भ को धारण करती थी और एक साथ पुत्रों को जन्म देती थीं। देव तुम्हारे पुत्रों को सुलसा के पास ले जाता और सुलसा के मृत पुत्रों को तुम्हारे पास ले आता था। देवकी, जिन छहों भिक्षुओं को तुमने देखा है, वे सुलसा के नही, तुम्हारे ही अगज पुत्र है। अतिमुक्त मुनि की वाणी मिथ्या नही है।" यह सुनकर देवकी को अपार हर्ष और अत्यन्त उल्लास हुआ।

देवकी वहाँ से उठकर छहो भिक्षुओं के पास गई और वन्दन करके समीप बैठ गई। उन्हे देखकर देवकी के स्तनो से दूध की धारा फूट निकली। पुत्रों का वात्सल्य दूध बनकर फूट निकला। उसकी कंचुकी भीग गई। वह अपने को धन्य-धन्य समझ रही थी। —अन्त कृ० वर्ग०३ अ० ८/७

इतिहास के पृष्ठों पर चित्रित नारी!—यह वही नारी है, जो आज पुत्र स्नेह के अवसर से ही दूर रहना चाहती है। कपडो की स्क्रीन बिगड़ने के भय से जो बेबी को दूर रखती है। न जाने यह कौन-सी नारी है?

—स०

सुलसा की धर्म-परीक्षा !

भगवान् महावीर के युग में अम्बड, एक प्रसिद्ध सन्यासी था। वह भगवान् के सिद्धान्तों से अत्यन्त प्रभावित था। एक बार उसने विचार किया: "राजगृह में भगवान् के हजारों-लाखों भक्त है। मै राजगृह जाने का सकल्प रखता हूँ। अपना यह संकल्प मै भगवान् से व्यक्त करूँ। देखे, भगवान् किसको अपना धर्म सन्देश देने को कहते है।"

अम्बड सन्यासी ने कहा: "भंते, मेरा राजगृह जाने का विचार है। आपकी कोई सेवा हो, तो फर्माएँ!"

प्रभु ने शान्तभाव से कहा: "वहाँ मेरी एक भक्ता है—सुलसा। उसको 'दमस्व' कहना।"

अम्बड ने विचार किया: "इतने विशाल नगर में से केवल सुलसा का ही नाम क्यो लिया! सुलसा को भक्ति की परीक्षा तो कर देखू ?"

मार्ग मे चलते अम्बड को विचार आया, "पुण्यशीला है, सुलसा, जिसको अरिहन्त भी याद करते है।" मुलसा के घर पहुँच कर अम्बड सन्यासी ने अनेक प्रकार की परीक्षा की। परन्तु सुलसा की निष्ठा, श्रद्धा और भक्ति मे कण भर भी अन्तर नही पड़ा। सन्यासी ने अनेक वैक्रिय रूप बनाकर सुलसा को अपनी शिष्या बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु जरा भी सफलता नही मिली। सुलसा ने गुरु बुद्धि से नमस्कार भी नही किया।

सुलसा की दृष्टि मे देव अरिहन्त, गुरु निर्गन्थ और दयामय

धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा भावना थी। परीक्षा में वह सफल रही।

. दशवैं० प्र० ३, नि० गा० १८२ ⊗

धर्म मे निष्ठावान् और श्रद्धावान् होना सरल नही है। जिसके शुद्ध चित्त मे धर्म के प्रति अटूट एवं अमिट श्रद्धा है, उसे लौकिक ऋद्धि-सिद्धि का प्रलोभन भी डिगा नहीं सकता। सुलसा की दृढ़ता इसका सत्य प्रमाण है।

—स०

जीवन के उत्थान-पतन की कहानी !

चम्पा नगरी में सोम, सोमदत्त और सोम-
मूर्ति तीन सहोदर भाई थे। उनके नागश्री,
भूतश्री और यक्षश्री तीन
पत्नियाँ थीं। एक दिन, भोजन बनाने की बारी नागश्री की थी। भूल से उसने कड़वा तूँबा बना लिया। परिजनो की निन्दा के भय से उसने धर्मघोष के शिष्य धर्मरुचि अणगार को दे दिया। मुनि ने जीवों की दया सोचकर उस विषाक्त तूँबे को डाला नही, खा लिया। धर्मरुचि मुनि के मरण के कारण को सुनकर नगर के लोगों ने नागश्री को धिक्कारा और घर वालों ने भी उसे निकाल दिया। आर्त एव रौद्र ध्यान के कारण वह मरकर नरक मे गई।

नागश्री का जीव अनेकों जन्मों के बाद चम्पा नगरी वासी सागरदत्त सार्थवाह की पत्नी भद्रा की कूँख से पत्नी के रूप मे जन्मा। नाम रखा—सुकुमालिका ! वह सुन्दरी थी, रूपवती थी, परन्तु विषकन्या थी। जिनदत्त सार्थवाह के रूपवान् पुत्र सागर ने उसके साथ विवाह किया, पर शीघ्र ही उसे छोड़ दी। फिर एक दरिद्र के साथ उसका विवाह किया, वह भी सुकुमालिका को छोड़कर भाग गया।

सुकुमालिका अपनी अपमान भरी जिन्दगी से तंग आकर बहुश्रुता गोपालिका आर्या के पास दीक्षित हो गई। एक बार वह सुभूति बाग मे तपस्या कर रही थी, वहाँ उसने देवदत्ता गणिका के साथ पाँच पुरुषो को देखा। प्रसुप्त वासना जाग उठी। संकल्प किया, मेरे तप का कोई फल हो, तो मुझे भी पाँच पुरुषों का सयोग

मिले। मनुष्य अपनी साधना के अमृत में विष घोलने का आदी रहा है।

देह त्याग कर वह देवी बनी। वहाँ से पंचाल देश के काम्पिल्य नगर मे द्रुपद राजा की रानी चुलणी की पुत्री बनी। नाम था, द्रोपदी। धृष्टद्युम्न इनका भाई था। पिता ने स्वयवर रचा, जिसमे अनेक देशों के राजकुमार और राजा आए। द्रोपदी ने पांच पाण्डवों के गले मे पाच रग की मालाएं डालकर उन्हे पति रूप से स्वीकार कर लिया।

®............ ....

हस्तिनापुर में घूमता-घूमता नारद आ पहुँचा। सब ने उठकर सत्कारपूर्वक नमस्कार किया। परन्तु द्रौपदी ने नारद को असयत और अविरत जानकर वन्दन नही किया। नारद ने बदले की मन मे गांठ बाध ली। अपूर्ण मनुष्य, अपने अपमान को कभी भूलता नही है। आग लगाकर दूर खड़े तमाशा देखने वालों मे नारद विख्यात है। वह धातकी खण्ड द्वीप मे पूर्व के दक्षिणार्ध भरत की अपर कका नगरी के राजा पद्मनाभि के पास जा पहुँचा। इनकी सात-सौ रानियाँ थी। पुत्र एक ही था, नाम था सुनाम राजकुमार।

नारद के मुख से द्रोपदी के रूप की प्रशंसा सुनकर राजा ने देव की सहायता से उसे अपने यहाँ मगा लिया। पाण्डव हैरान थे। कृष्ण को नारद से ज्ञात हो गया। पाण्डवों को लेकर कृष्ण देव की सहायता से अपरकंका में जा पहुँचा। युद्ध किया। द्रौपदी को लेकर लौट रहा था कि कपिल वासुदेव ने सुव्रत अरिहन्त के कथनानुसार कृष्ण के रथ की ध्वजा को देखा। दोनों ने शंख बजाया। कृष्ण लवण सागर के देव से मिलने ठहर गया और

द्रोपदी सहित पाण्डव नौका से गंगा पार करके नौका छुपा कर बैठ गए। कृष्ण अपने बल से गंगा पार करके आ गया। पाण्डवों के इस व्यवहार से कृष्ण नाराज हो गए। पाण्डवों को देश निष्कासित कर दिया। बाद मे कुन्ती की प्रार्थना पर पाण्डवों को मथुरा दे दी।

अन्त मे प्रव्रजा लेकर पांचो पाण्डव अपनी साधना से सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए। द्रौपदी भी आर्या बनी, शुद्ध साधना करी। देव बनी, वहाँ से महाविदेह मे मुक्त होगी।

—ज्ञाता अ० १६/८

तप और त्याग का लक्ष्य आत्म-शोधन है। भोग के लिए किया गया तप सुन्दर नही, मंगल नही। तप से चित्त शोधन होता है। नागश्री कितनी भूली, कितनी भटकी ! पर जब पथ पर आई तो लक्ष्य पर शीघ्र पहुंच गई। विपथ ही भूल-भुलैया मे डालता है। पथ आँखो के सामने आ जाने पर कोई विकल्प नही रहता।

—सं०

आर्या चन्दना का उपालम्भ !

कौशाम्बी नगरी में भगवान् महावीर का समवसरण लगा था। मृगावती दर्शन को गई। परन्तु वहाँ विलम्ब हो गया, क्योंकि चन्द्र और सूर्य भी भगवान् के दर्शनों को आए थे, अतः समय का पता न लगा। जब मृगावती स्वस्थान को लौटी तो विकाल हो चुका था।

आर्या चन्दना ने मृगावती को कहा : "उत्तम कुलोत्पन्न होकर भी तुमने लौटने में विकाल क्यों किया ?"

कुलीन नारी को मधुर उपालम्भ भी पर्याप्त होता है। मृगावती ने अपनी भूल की विनम्र स्वर मे क्षमा मागी और भविष्य मे सजग रहने का संकल्प व्यक्त किया।

आर्या चन्दना सो गई, और मृगावती बैठी-बैठी अपनी भूल का पश्चाताप करती रही। वह सोचने लगी : "मैंने यह भूल क्यों की। मुझे अपने मत मे अप्रमत रहना चाहिए।"

शुभ अध्यवसायों की परिणति बढ़ती रही। इतनी बढ़ी कि केवल-ज्ञान का दिव्य प्रकाश हो गया।

रात के अंधेरे में एक सांप इधर-उधर घूमता हुआ वहाँ आ निकला। मृगावती ने आर्या चन्दना का हाथ धीरे से उठाकर ऊपर कर दिया। निद्रा खुल जाने से चन्दना ने पूछा :

"यह क्यों ?" मृगावती ने विनम्र स्वर मे कहा : "एक सर्प इधर से निकल रहा था।"

"परन्तु रात के घोर अन्धकार में सर्प का बोध तुम्हें कैसे

हो गया ?"

मृगावती ने शान्त स्वर में कहा : "मुझे अब कही पर भी अन्धकार नहीं, सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दृष्टिगत होता है।" चन्दना ने मृगावती के इस सत्य को स्वीकार किया।

⊗

क्षमा का जल, मनोमल को धो डालता है। पश्चाताप की आग मनोविकारो को जला देती है। अपनी भूल का पश्चाताप करना सरल नही है। मृगावती इस सत्य का उत्कृष्ट प्रमाण है। नारी के लिए कहा जाता है कि वह अत्यधिक आग्रहशील होतीं है। किन्तु मृगावती कितनी सरल, कितनी निष्पाप—अन्दर और बाहर एक समान !

—स०

विश्वास बदला तो विश्व बदला !

मगध जनपद मे राजगृह एक शोभित नगर था। वह मगध की राजधानी था। राजा श्रेणिक और महारानी धारिणी अपने देश और नगर की प्रजा का अपनी निज सन्तान की तरह संरक्षण और संवर्धन करते थे। प्रजा भी श्रद्धा और भक्ति से उनके आदेशो का परिपालन करने में अपना हित समझती थी।

महारानी धारिणी सुख निद्रा मे सोई थी। स्वप्न में उसने देखा—एक श्वेत गजराज उसके मुख के अन्दर प्रवेश कर रहा है। रानी अपनी शैया से तुरन्त उठ बैठी, और राजा के शयन कक्ष में जाकर सविनय बोली :

"प्राणनाथ, मैंने अभी-अभी यह स्वप्न देखा है। यह शुभ है या अशुभ ! इसका फल क्या है?"

श्रेणिक ने मधुर स्वर में कहा : "प्रिय, तुम्हारा यह स्वप्न शुभ है। इस शुभ स्वप्न के तीन महा लाभ निर्बाध होने वाले है—पुत्र लाभ, अर्थ लाभ और राज्य लाभ।"स्वप्न फल सुनकर रानी राजा को वन्दन करके वापिस अपने शयन कक्ष में लौट आई।

योग्य समय पर रानी के पुत्र जन्म ने राजभवन, नगर और देश को मुखरित कर दिया। राजकुमार का नाम मेघकुमार रखा गया। कलाचार्य के पास रहकर मेघकुमार ने अपनी तीव्र प्रतिभा से समस्त कलाएँ और विद्याएँ सीख ली। युवा होते ही अनेक सुन्दरी एवं गुणवती राजकन्याओं के साथ मेघ का विवाह हो गया। ससार के विषय सुख में मेघकुमार निमग्न हो गया।

आध्यात्मिक जागरण का आघोष करने वाले प्रभु महावीर राजगृह नगर के गुणशीलक बाग मे आकर विराजित हुए। नगर के हजारो जन, दर्शन और अमृत वाणी का महालाभ लेने आने लगे। मेघकुमार की मोह निद्रा भंग हुई। वह भी परम प्रभु के पावन चरणों मे पहुँच गया। देशना सुनकर भावितात्मा हो गया। उसके मन मे यह प्रश्न बिजली की तरह कोध गया :

"मुझे किधर जाना चाहिए था, और मैं किधर चल पड़ा हूँ! मै एक राह भूला राही था, अब राह बताने वाला मिल गया। यदि अब न सँभला तो फिर कब सँभलूँगा?"

मेघकुमार का जन्म-जन्म का सोया मनुवा गुरु-शब्द सुनकर जाग उठा। जो ससार अभी तक मधुर एव सुखद था, अब दृष्टि बदलने से वही खारा और दुःखद हो गया। महल वही थे, राज-रानियाँ वही थी, राग-रग वही सब—ज्यों का त्यो! परन्तु मन बदलने से सब बदल गया था। विश्वास बदला तो विश्व बदल गया।

◎................

रंग-रंगीले महल, मेघकुमार के लिए कारागृह हो गए। प्राणप्रिया वनिताएँ पैर की बेड़ी बन गईं। परन्तु मेघकुमार के आध्यात्मिक जागरण ने एक झटके में उन्हें तोड़कर दूर फेक दिया। अब यदि कोई बन्धन शेष था तो जन्म देने वाली माता की सहज ममता थी। मनुष्य सब कुछ ठुकरा सकता है, परन्तु माता की ममता का वह सहसा तिरस्कार नही कर सकता। धीरे-धीरे अनुनय-विनय से मेघकुमार ने माता की ममता पर भी विजय पा-ली। आत्म-बोध की तीव्र भावना लेकर वह प्रभु के चरणों में जा पहुँचा।

परम प्रभु महावीर के चरणों में उपस्थित होकर मेघकुमार ने विनीत भाव से कहना आरम्भ किया :

"भंते, यह संसार विषय और कषाय की आग से जल रहा

है। घर में आग लग जाने पर गृह स्वामी अपनी सारी वस्तुएं लेकर बाहर निकल आता है, वैसे ही मैं भी अपनी प्रिय वस्तु आत्मा को इस प्रज्ज्वलित संसार गृह से निकाल लेने की भावना से प्रव्रजित होना चाहता हूँ।"

मेघकुमार की माता महारानी धारिणी ने स्नेह भरे हृदय से और अश्रुपूर्ण नेत्रों से भगवान् की ओर देखते हुए विनम्र भावेन निवेदन किया :

"भंते, यह मेघकुमार मेरा पुत्र है। मुझे यह अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है, कान्त है, इष्ट है और प्रिय है। जिस प्रकार कुमुद पंक में से पैदा होकर भी पंक और जल से अभिलिप्त नहीं होता, उसी प्रकार यह मेरा मेघ भी काम-भोगमय जीवन व्यतीत करके अब काम-भोगो से निर्लिप्त होने की भावना रखता है। भते ! मैं आपको यह शिष्य-भिक्षा दे रही हूँ। स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कीजिए, मेरी प्रार्थना अंगीकार कीजिए।"

मेघकुमार के प्रव्रजित होते ही माता धारिणी ने गद्गद् स्वर में कहा : "तात, तुम अब आगार से अणगार बने हो। संयम-साधना मे प्रयत्न करना, पराक्रम करना, जरा भी प्रमाद मत करना, इन्द्रियों का निग्रह करना, मनोवृत्तियों का निरोध करना, राग और द्वेष पर विजय पाना और शुक्ल-ध्यान के बल से सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनना। मेरी तरह किसी अन्य मातृ-हृदय के रोदन में निमित्त मत बनना, वत्स !"

◎................

मेघकुमार अब राजकुमार नही, एक आत्म-साधक भिक्षु बन गया। अन्य भिक्षुओं की तरह वह भी भगवान् के आदेशों का परिपालन करने को तत्पर हो गया था।

प्रव्रजा दिवस की पहली रात थी। मेघकुमार की शैया लघु

होने के कारण सब भिक्षुओं के अन्त में द्वार के पास थी। आते-जाते भिक्षुओं के पैरो की रज और ठोकरो से मेघकुमार सुख से सो नही सका। वह अधीर हो गया। उसके मन मे विचार उठा :

"ये भिक्षु कितने स्वार्थी है ? जब मैं राजकुमार था, तब मेरा कितना आदर करते थे और अब कितना अनादर करते हैं ! ठोकरे मारते फिरते है ! मुझ से इस प्रकार का संयम नही पल सकेगा। भगवान् का यह संयम मार्ग भगवान् को ही मुबारक हो।"

वह राजभवन का आदर-सत्कार मेघकुमार की कल्पना में बिजली बनकर कौंध गया। रात जैसे-तैसे करवट बदलते कट गयी।

उधर सूर्य उदीयमान था, इधर मेघकुमार भगवान् के चरणों में रात बीती सुनाने पहुँचा। मेघकुमार को आते देख, भगवान् ने स्वयं कहा : "मेघ, रात तुम्हें बड़ी वेदना रही। सुख से निद्रा नही आ सकी। आते-जाते भिक्षुओ के पैरों की ठोकरों से तुम अधीर हो उठे, और सयम त्याग का सकल्प किया।"

मेघकुमार ने सब स्वीकार किया।

भगवान् ने सान्त्वना देते हुए कहा : "मेघ ! वर्तमान मानव भव से पूर्व, तीसरे भव में और दूसरे भव में तुम गज योनि में थे। वहाँ एक शशक की दया करने के लिए तुमने कितना कष्ट उठाया था। और आज तुम मानव होकर भी, उसमें भी भिक्षु होकर साधारण-से कष्ट से इतना अधीर हो गये। मेघ, सावधान ! अपने को सँभालो, वत्स ! अधीर मत हो, समभाव से कष्ट सहन करो। मान-अपमान की तुला पर अपने आपको मत तोल !"

भगवान् की वाणी सुन, मेघकुमार संयम में स्थिर, धीर

और अचंचल बन गया और अपना सम्पूर्ण जीवन, सयम और श्रमण सेवा मे समर्पित कर दिया।

⊗ ⊗

प्रस्तुत कहानी, लेखक की तपी, मंजी, सवरी भाषा और शैली का उत्कृष्ट रूप है। मनोभावो का सुन्दर चितेरा सन्त लेखक कहता है--नारी के स्नेह की गहराई कितनी विस्तृत है। धारिणी का स्नेह विश्व-वेदना की वीणा मे वज उठा तो—उसने विश्व-मंगल के लिए अपनी आत्मा के धन को प्रभु के चरणो मे सोपा और हृदय के सम्पूर्ण स्नेह को उडेलते हुए कहा · "मेरे लाल मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है! तू साधना पथ का वह अमर पथिक वन कि फिर किसी माता के उदर मे न आना पड़े! कोई माँ तेरे वियोग मे आँसू न वहा सके। वेटा! मेरे आँसू मैं पोछती हूँ! अव किसी के आँसुओ का खारा पानी मत ढुलकाना! इस पानी मे हृदय की गहरी पीर होती है—मेरे मेघ!"

—सं०

माता की ममता जीत गई !

साधुता का मार्ग सहज और सुखद नही है। वह फूलों का मार्ग नही, काँटों का मार्ग है। बलवान् आत्मा ही दृढ़ता के साथ इस मार्ग पर आगे बढ़ सकती है।

एक बार तगरा नगरी मे विहार करते-करते आचार्य अर्हन्मित्र अपने शिष्य वर्ग के साथ पधारे। आचार्य की कल्याणी वाणी सुनकर वणिकदत्त को वैराग्य हो गया। प्रव्रजा लेने का संकल्प किया। भद्रा पत्नी और अरणक पुत्र ने भी संयम लेने की भावना व्यक्त की। तीनों प्रव्रजित हो गए। दत्त को अरणक पर अत्यन्त स्नेह था। वह स्वयं ही उसकी भिक्षा लाता और सेवा करता था। अति स्नेह भी अनर्थकर होता है। अरणक कर्मठ नही बन सका। दूसरे साधु मन में सब समझते हुए भी बाहर में कुछ कह नही सकते थे। सभ्यता भी एक अर्गला है, जिसमें बन्द होना ही पड़ता है।

कालान्तर में वृद्ध पिता दत्त के देहावसान पर अरणक को बड़ी चिन्ता हुई। दो-चार दिन तक सन्तो ने अरणक को भोजन-पान लाकर दिया। बाद मे स्वयं उसको ही लाना पड़ता।

भीष्म ग्रीष्म पड़ रहा था। ऊपर से सूर्य तप रहा था, नीचे से धरती तप रही थी। गरम लू चल रही थी। अरणक आज पहली बार भिक्षा को निकला था। गरमी, भूख और प्यास—तीनों ने मिलकर अरणक को अधीर बना दिया। वह एक गृह की छाया में खड़ा हो गया। सयम की कठोरता को वह मन ही

मन अनुभव कर रहा था।

सहसा एक तरुणी नारी ने उसे गली में क्लान्त खड़ा देखा। नारी रूप देखती है। अपनी दासी को भेजकर उसने अरणक को ऊपर बुला लिया!

पूछा : "आप कौन है? और क्या चाहते है?"

"मैं भिक्षु हूँ, और भिक्षा लेने आया हूँ।"

नारी ने मधुर स्वर में पूछा: "आप भिक्षु क्यों बने? यह सुन्दर शरीर क्या तप के लिए है? यह तारुण्य निष्फल क्यों खोते हो?"

नारी के वचनों का माधुर्य पुरुष को बेभान कर देता है! अरणक योग को भूल गया और भोग के दल-दल मे धस गया! अरणक भोग के अन्धकार में खो गया, वह मार्ग भूल गया।

◎........ .. ....

इधर स्नेही साथी साधुओं ने बहुत देखा-भाला, पर अरणक का कही पता नही लगा। साध्वी माता भद्रा को ज्ञात हुआ: "अरणक भिक्षा को गया था, अभी लौटा नही।"

माता की ममता जाग उठी। वह नगरी की गली-गली में, डगर-डगर मे अरणक को खोज रही थी। जिस किसी को भी वह मार्ग मे देखती उसे अरणक का परिचय देकर पूछती: "क्या तुमने देखा है, कही पर मेरा लाल।"

संसार में सभी प्रकार के मनुष्य होते है। दूसरे के सन्ताप पर हँसने वाले भी है, तो सहानुभूति रखने वाले भी हैं। परन्तु अरणक का पता नही लग सका।

भद्रा पगली बन चुकी थी। अति शोक मनुष्य को उन्मत्त

कर देता है। गवाक्ष में बैठे अरणक ने इस पगली नारी को देखा। यह वात्सल्य की प्रति-मूर्ति उसकी जानी-पहचानी थी। उसे अपनी करनी पर खेद हो आया। स्नेहाभिभूत हो तल्ले से उतर पडा। माता के सम्मुख आँसू भर कर बोला: "माता! मेरी माता, और उसकी यह दशा? माँ, मै हूँ तेरा अरणक! क्षमा करो माता, मेरे गुरुतर अपराध को।"

नारी का स्नेह हार गया, माता की ममता जीत गई। अस्वस्थ अरणक स्वस्थ हो गया।

अरणक ने माता से पुनः सविनय कहा: "माता, मैं लम्बा संयम नही पाल सकता। मार्ग भले ही कठोर हो, परन्तु छोटा हो। आज्ञा हो, तो अनशन कर लूँ!"

◎.........

आचार्य की सेवा में पहुँचकर आलोचना की, जीवन की सशुद्धि की और आचार्य तथा माता की आज्ञा से तप्त शिला-खण्ड पर पादपोप गमन सथारा कर लिया। अल्पकाल मे ही सुकोमल शरीर नवनीत-सा पिघल गया। अरणक ने अपना कार्य साध लिया।

अरणक जितना भीरु था, उतना ही वीर निकला। ग्रीष्म परीषह को जीतने वाले साधक के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी सुकुमालता का परित्याग करे।

उ० अ०, नि० गा० ९२/⊗

नारी, पुरुप की पहली कमजोरी है। यह वह पाश है, वह वन्धन है जिसमे वाध लेने की शक्ति नही, फिर भी पुरुप ऐसा बंधता है कि उसकी महत्वाकाक्षाएँ कुचल-कुचल कर

चिथड़े-चिथड़े हो जाती है। नारी के बंधन से अरणक कभी मुक्त नहीं हो सकता था। पर माँ की पुत्र के लिए भटकती ममता उसे नारी के मोह बन्धन से खींचकर ले आई। इस तरह नारी का मोह हार गया—माता की ममता जीत गई।

—सं०

नारी के मन को !

नारी का मन........?
हाँ नारी का मन......!
कितना गूढ..........!
कितना व्यापक.......!!
कितना विशाल........!!!

नाप सकोगे नारी के मन को ?
किसने नापा है, उसके मन को ?
जो हृदय में पैठ गया उसके !
या जिसको पैठा लिया उसने ?
हाँ जिसको पैठा लिया उसने !
हाँ उसी ने नापा है उसको !
उसी ने नापा है उसके मन को !
नारी के मन को !

—मुक्त चिन्तक

पुरुष की शक्ति !

इस विभाग में पुरुप की शक्ति किस ओर मुड़ जाती है—समय, प्रेरक और मार्ग-दर्शक के संकेत मात्र से ! पुरुष, अपनी मन, वचन और कर्म की त्रिकोणात्मक शक्ति को निर्माण मे लगाकर किस प्रकार अपने बन्धनो को तोड़ देता है। विनाश मे लग कर पुरुष की शक्ति कितनी गहरी खाइयां खोद देती है ! संहार लीला के शस्त्रास्त्र मे पुरुष की शक्ति जुटी तो अखिल विश्व के विनाश के सामान जुटा दिये उसने ! पुरुष की भुजाएँ प्रथ्वी के दो कोण मिला देने की ताकत रखती हैं।

जब यह महा शक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र में लगती है तो उधर भी अपूर्व कौशल दिखाती है। कोणिक के जवानी के तूफान ने पिता को सीखचो में बन्द कर दिया !

पुरुष की शक्ति, विनाश और विकास दोनो ही ओर समान रूप से गति प्रगति करती हैं। इस विभाग का यही सार लेखन है। पहला नमूना कोणिक की शक्ति है। यह भी उसकी शक्ति का उपयोग था !

सपादक

जवानी का तूफ़ान !

मगध सम्राट् बिम्बसार श्रेणिक के दो तेजस्वी पुत्र हुए थे—नन्दा रानी का अभयकुमार, और चेलना रानी का कोणिक। अभयकुमार श्रेणिक का मन्त्री था। विकट-से-विकट समस्या को भी अभय अपनी बुद्धि से सहज ही सुलझा देता था। अभयकुमार विनीत, विनम्र और शिष्ट था। वह राजा को अत्यन्त प्रिय था। कोई भी राज्य का काम अभय की अनुमति के बिना नही हो पाता था। अभय बुद्धिमान् था, भक्तिवान् था, और व्यवहार में मधुर तथा चतुर भी। प्रजाजन भी अभय को प्रेम भरी दृष्टि से देखते थे।

कोणिक अपने जीवन के प्रारभ से ही उद्धत, अविनीत और अहंकारी था। जब वह चेलना के गर्भ में था, तो चेलना को अपने पति श्रेणिक के कलेजे का मांस खाने का दोहला हुआ था। इस अशुभ पुत्र को जन्मते ही चेलना ने उसे कुरड़ी पर फिकवा दिया था। अपने गर्भ को नष्ट करने के लिए भी चेलना रानी ने प्रयत्न किया था। किन्तु श्रेणिक के पितृ-हृदय ने सदा कोणिक को प्यार किया और रक्षा भी। कोणिक की रक्षा के लिए श्रेणिक ने चेलना को विशेष प्रेरणा भी दी थी। वह कोणिक को अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित देखना चाहता था। गुलावी बचपन से निकल कर कोणिक ने अपने महकते यौवन में प्रवेश किया। आठ राज-कन्याओं के साथ उसका परिणय हो गया। जीवन के सुख-भोगो मे कोणिक मत्त हो गया। भोग, विलास, वैभव—इन तीनों में वह ग्रस्त था !

कोरिएक की राज्य-लिप्सा जाग उठी। उसने पिता से कहा : "तुम वृद्ध हो गए हो। फिर भी, अभी तक राज्य लोभ नही छूटा है। मैं कब राज्य करूँगा ? मेरा यौवन तीव्र गति से बीता जा रहा है।" उसने अपने कालीकुमार प्रभति दश भाइयों को अपने अनुकूल बनाकर विद्रोह कर दिया, और राज्य सिहासन पर अधिकार कर लिया। पिता श्रेरिएक को जेल के सीखचों में बन्द कर दिया। किसी को भी मिलने की अनुमति नही थी। अपनी माता चेलना के अत्यन्त अनुरोध पर दिन मे केवल एन बार मिलने की अनुमति न जाने उसने कैसे दे दी थी।

मनुष्य कितना भी कटोर क्यों न हो, वह सब कुछ भूल सकता है. परन्तु अपनी जन्म देने वाली माता को नही भूल सकता, एक बार कोरिएक के मन में माता के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह वन्दन करने आया। माता चेलना उदास बैठी थी, कोरिएक ने पूछा :

"अम्ब, आज इतनी उदास क्यों ? तुम्हारा पुत्र कोरिएक आज मगध और अंग देश का सम्राट् है, अधिपति है। प्रसन्नता के बदले यह खिन्नता क्यों ?"

"जिस पुत्र ने अपने पिता को बन्दी बना कर जेल में डाल दिया है, क्या वह माता के साथ वैसा व्यवहार नही कर सकता ?" चेलना ने भर्त्सना के स्वर में कहा।

चेलना ने फिर अपने दबे उद्‌गारों को व्यक्त करते हुए कहा : "कोरिएक, तू नही जानता कि तेरे पिता तुझसे कितना प्यार करते थे।" अन्तर दुःख के उद्वेग के साथ चेलना ने कोरिएक को, गर्भ में आने से लेकर पालन-पोषण और उसके विवाह तक की घटनाओं को कह सुनाया। कोरिएक ने अभी तक जिस दृष्टि से पिता को

एक बार भगवान् महावीर विहार करते-करते चम्पा नगरी पधारे। राजा कोणिक को सूचना मिली। कोणिक भगवान् का भक्त था। उसने दर्शन व वन्दन को जाने का सकल्प किया। सम्पूर्ण नगर सजाया गया। विशाल सेना, विपुल वैभव और समग्र अन्तःपुर के साथ सज-धजकर कोणिक भगवान् की धर्म-सभा मे आया। भगवान् को वन्दना करके कोणिक बैठ गया। वह एकाग्र और एकनिष्ठ होकर भगवान् की कल्याणी वाणी सुन रहा था। भगवान् कोमल, मधुर और शान्त स्वर मे, सर्वजन सुलभ अर्ध-मागधी भाषा में बोल रहे थे :

"यह जीवन—जिसके सौन्दर्य पर मनुष्य मुग्ध है, वह जल में बुद्बुद के तुल्य है।"

"यह जीवन—जिस पर मनुष्य को गर्व और अहकार है, वह कुशा के अग्रभाग पर स्थित जल-बिन्दु के समान चंचल है।"

"जीव है, अजीव है। जीव का बन्ध भी है, जीव का मोक्ष भी है। पाप भी है, और पुण्य भी है।"

"अच्छे कर्मो का फल अच्छा होता है और बुरे कर्मो का फल बुरा होता है।" भगवान् की मधुर वाग्धारा पर श्रोता मुग्ध थे निमग्न थे, प्रसन्न थे।

परिषदा के चले जाने पर कोणिक भी वन्दन करने को भगवान् के समीप में आया, और नम्र स्वर में बोला :

"भंते, आपका निर्ग्रन्थ प्रवचन श्रेष्ठतम है, वह पवित्रतम है, वह जीवन को स्वच्छ, निर्मल तथा पावन करने वाला है। भते, मैं उसमें आस्था, निष्ठा और श्रद्धा करता हूँ।"

कोणिक लौट गया। विचारों की ज्योति अपने साथ लेकर।

कोणिक अब भक्त था, विनम्र था, और विनीत था !

—उववाई सुत्त, निरया०, अ० १,/8

भारतीय इतिहास में कंस और कोणिक ने अपने-अपने पिता उग्रसेन और श्रेणिक (बिम्बसार) के साथ कैसा व्यवहार किया है; भारतीय जनता इस घटना से भली-भाँति परिचित है। मुगल काल मे औरंगजेब ने इतिहास को फिर दोहरा दिया, शाहजहाँ को कैद करके। तीनो घटनाओ के मूल मे तीव्र राज्य-लिप्सा नंगी होकर नाच रही है। पर स्वार्थ मे डूबे को भी उबारने वाला चाहिए; वह बाहर आ सकता है। माता के वचन सुन, कोणिक जागा था। 'गुरु सबद सुन मन जागा' जागा ही है--अतीत से आज तक !'

—सं०

कोणिक और चेटक का युद्ध !

◎

हल्ल और विहल्ल—दोनों कोणिक के सहोदर भाई थे और चेलना के अंगज पुत्र थे । अपने जीवन-काल में राजा बिम्बसार श्रेणिक ने अपने हाथों से हल्लकुमार को आसेचनक गन्ध हस्ती और विहल्लकुमार को अठारह लड़ी का का वक हार दिया था । राज्य की ये दोनों वस्तुएँ रत्न थे ।

◎

कोणिक की रानी पद्मावती को इस बात को बहुत दिनों से जलन थी । कोणिक ने एक बार स्पष्ट कह ही दिया था :

"इन दोनों वस्तुओं पर मेरा कोई अधिकार नही है । पिता जी ने अपने हाथो से उन्हे ये वस्तुएँ दी है। और फिर, हल्ल-विहल्ल मेरे भाई है । उनकी वस्तु मेरी ही वस्तु है ।" परन्तु पद्मावती के तिरिया हठ से परेशान होकर कोणिक ने हल्ल-विहल्ल से हार और हाथी की माँग कर ही दी ।

हल्ल और विहल्ल ने सोचा : "कोणिक बलवान् राजा है । हमारी शक्ति सीमित है । पद्मावती का षड्यन्त्र और कुचक्र शान्त होने वाला नही है । आज तो हम से हार और हाथी की माँग की गई है, परन्तु कल हम से वह छीना भी जा सकता है ।" वे दोनों हार, हाथी और अपनी रक्षा के लिए अपने नाना चेटक के पास जा पहुँचे ।

चेटक वैशाली गणराज्य के अधिपति थे । कोणिक एव हल्ल और विहल्ल की माता चेलना, चेटक की पुत्री थी । वडे प्रयास से श्रेणिक ने इसके साथ विवाह किया था । रानी चेलना की सतत

प्रेरणा से ही राजा श्रेणिक जैन-धर्म में अनुरक्त बना था।

कोणिक का क्रोध उभर आया, जब कि उसने हल्ल और विहल्ल का व्रत सुना। कोणिक हार और हाथी, और वह भी हल्ल-विहल्ल के साथ लेने को तुल गया; और उधर चेटक भी हार, हाथी तथा हल्ल-विहल्ल की संरक्षा के लिए सर्व प्रकार से सनद्ध था!

◎.......... ....

दोनों पक्षों की सेना रणभूमि पर छा गई। घनघोर, भयकर, दारुण युद्ध प्रारभ हो गया,! अश्व सेना, रथ सेना, गज सेना तथा पदाति सेना—सभी युद्ध में उतरी। चेटक ने अपने अमोघ बाणों से कालीकुमार प्रभृति दस कुमारों को मार डाला। इससे क्रुद्ध होकर कोणिक ने महाशिला कण्टक और रथ-मुसल सग्राम की रचना की। अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर कोणिक युद्ध में भिड़ गया था। चेटक हार गया और कोणिक जीत गया। परन्तु विजेता बनने पर भी वह पराजित के बराबर ही था।

क्योंकि उसे हार, हाथी और हल्ल-विहल्ल नही मिल सके। बंक हार को देव ले गया, हाथी आग में जला दिया गया और हल्ल-विहल्ल इस स्वार्थ पूर्ण एवं बर्बर ससार का परित्याग करके भगवान् महावीर के पास दीक्षित होकर आत्म-साधक बन गए थे।

युद्ध की ज्वाला मे महा योद्धा चेटक भी मर गया। युद्ध का परिणाम कभी सुखद और सुन्दर नही होता।

—निरयावलिका सुत्त, अ० १, ⊗

ईर्ष्या की आग मे जलने वाला मनुष्य न स्वयं सुखी रहता है और न दूसरो के सुख को देख सकता है। युद्ध का बीज ईर्ष्या

और विद्वेष की भूमि में अंकुरित होता है। भारत मे तीन महायुद्ध हुए है—राम-रावण का, कौरव-पाण्डवो का और कोणिक-चेटक का। मोह, विद्वेष और लोभ की आधार शिलाओं पर खडे होकर ये युद्ध हुए; पर परिणाम क्या हुआ, यह विचारणीय प्रश्न है!

—सं०

चक्रवर्ती बनने की लालसा !

जो मनुष्य अपनी शक्ति से, अपनी योग्यता से अधिक फल की कामना करता है और उस फल को समय से पूर्व चाहता है, वह कभी अपना विकास नहीं कर सकता।

एक बार श्रेणिक का पुत्र कोणिक, भगवान् महावीर के दर्शनों को आया। भगवान् के श्रीचरणों में वन्दना करके बोला :

"भंते, जो चक्रवर्ती अपने जीवन में काम-भोगों का परित्याग नही कर सकता, वह मरकर कहाँ जाता है ?"

"सातवीं नरक में," भगवान् ने शान्त स्वर में कहा।

कोणिक अहंकार-वश अपने आपको चक्रवर्ती समझ रहा था। पूछा : "भंते, मरकर मैं कहाँ जन्म लूँगा ?"

"छठी नरक में !"

"सातवीं में क्यों नहीं, भंते ?"

"तू चक्रवर्ती नही है, इसलिए !"

कोणिक ने अधीर होकर पूछा : "भंते क्या मैं चक्रवर्ती नहीं बन सकता ! मेरे पास इतनी विशाल सेना है, इतना विपुल वैभव है, तब भी !"

भगवान् ने कोमल वाणी में कहा :

"वत्स, तुम्हारे पास उतने रत्न नही हैं, उतनी निधि नहीं है, जितनी एक चक्रवर्ती के पास होनी चाहिए। इसीलिए तुम चक्रवर्ती पद नही पा सकते।"

कामना का शिकार मानव अपनी शक्ति का सन्तुलन नहीं कर पाता। कोणिक के मानस मे चक्रवर्ती बनने की भूख प्रबल थी; उसने कृत्रिम रत्न बना-बना कर निधि भर ली। विजेता बनने के लिए तमिस्रा गुहा में ज्यों ही प्रवेश करने लगा कि प्रतिपालक देव ने निषेध की भाषा में कहा :

"चक्रवर्ती बारह ही होते हैं और वे हो चुके हैं। आप चक्रवर्ती नही हैं; अतः इस कन्दरा में प्रवेश करने का साहस न करे। यदि आप इस प्रकार की अनधिकृत चेष्टा करेंगे तो विनाश को प्राप्त करेंगे।"

"विनाश काले विपरीत बुद्धिः" वाली बात हुई। तमिस्रा गुहा में कोणिक के अनधिकृत प्रवेश करने पर प्रतिपालक देव ने प्रहार किया। कोणिक मरकर छठी नरक भूमि में उत्पन्न हुआ। चक्रवर्ती बनने की कामना पूरी न कर सका।

—दशवै० अ० १, निर्युक्ति गा० ७८/⊗

कोणिक के सम्बन्ध में लगभग चार कथानक अब तक आ गए है, पर चारो ही अपने आप में स्वतंत्र और परिपूर्ण हैं। एक कहानी मे व्यक्ति के मनोभावो का एक ही चित्र तो चित्रित किया जा सकता है। कोणिक के चरित्र का चित्रांकन एक चित्र से चित्रित नही किया जा सकता था; अतः हमने यहाँ चार चित्र दिये हैं उसके जीवन के! इस कथानक मे कोणिक की चक्रवर्ती बनने की तीव्र लालसा का प्रतिबिम्ब झलक रहा है।

—सं०

आसक्ति का जाल !

राजा कोणिक द्वारा शासित चम्पा नगरी में माकन्दी सार्थवाह रहता था। भद्रा, उसकी सहचरी थी। जिनपालित और जिनरक्षित दो योग्य पुत्र थे। वे चतुर, साहसी और विनीत थे। अनेकों बार उन्होने व्यापार के लिए लवण सागर की लम्बी यात्रा की।

पिता ने कई बार कहा: "अब अपने को धन की जरूरत नहीं है। पर्याप्त धन तुम कमा चुके हो। अतः खतरे से भरी-पूरी लवण सागर की यात्रा तुम बन्द कर दो।" परन्तु वे नही माने, यात्रा पर चल पड़े। जवान के नये खून में जो जोश होता है, वह उसे शान्ति से बैठने नहीं देता। धन की आसक्ति मनुष्य को मृत्यु के मुख मे जाने को भी तैयार कर देती है।

लवण सागर की विशाल छाती पर उनका जहाज चला जा रहा था। सागर में सहसा तूफान आ गया। जहाज प्रबल पवन के वेग को न सह सका। एक तख्ते के सहारे से वे रत्नद्वीप जा लगे। वहाँ रत्नद्वीप की एक देवी रहती थी। उसे ज्यों ही जिनपालित और जिनरक्षित के आने की सूचना मिली, त्यों ही वह उनके पास आई। अपने सुन्दर प्रासाद में उन्हें ले गई और कहा:

"तुम यहाँ रहो और मेरे साथ पत्नी जैसा व्यवहार करो। मैं आज से तुम्हें अपना पति स्वीकार करती हूँ। यदि तुमने मेरी बात स्वीकार नही की, तो तुम्हारा सिर होगा और मेरी खून की प्यासी तलवार!" भय और लोभ से मनुष्य अनुचित बात को

स्वीकार करने में विवश हो जाता है। उन्होंने भी स्वीकार किया।

एक बार रत्ना देवी लवण सागर की देख-भाल करने गई और दोनों से कह गई : "तुम यही रहना। मैं जल्दी लौटने का प्रयत्न करूँगी। दक्षिण दिशा को छोड़कर तुम किसी भी दिशा में जाना, सर्वत्र तुम्हें बाग-बगीचे और आमोद-प्रमोद के साधन मिलेंगे। दक्षिण में एक दृष्टि-विष सर्प रहता है, उधर भूलकर भी मत जाना।"

निषेध, मनुष्य के मानस में एक तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है। जिनपालित और जिनरक्षित, देवी के बन्धनों से अकुला गए थे। माता-पिता की मधुर स्मृति और मातृ-भूमि का सहज स्नेह उनके मानस में पल्लवित हो गया। दृढ़ निश्चय मनुष्य को मार्ग बताता है।

वे दक्षिण दिशा में बढ़ चले। आगे चलकर शूली पर चढ़े एक मनुष्य को देखा और पूछा : "तुम कौन हो ?"

उसने कहा :

"मैं एक व्यापारी हूँ। रत्ना देवी की वासना का शिकार होने से ही मेरी यह दशा हुई है। उसकी बात न न मानने पर वह यही हाल करती है। तुम अपना कल्याण चाहते हो तो यहाँ से पूर्व दिशा की ओर जाओ। वहाँ एक खण्ड में शैलक यक्ष का यक्षायतन है, वह अश्व-रूप में रहता है। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन वह अपने भक्तों से कहता है—'किसकी रक्षा करूँ।' अतः तुम वहाँ जाने से छूट सकते हो।"

सुख की राह बताने वाला कितना प्रिय होता है! जिनपालित और जिनरक्षित वहाँ जा पहुँचे। यक्ष ने कहा : "तुम मेरी पीठ

पर बैठ जाओ। परन्तु ध्यान रखना, तुम जरा भी उसके भय और प्रलोभन में मत फंसना। जरा भी फंसे, कि मरे।"

अश्व-रूप यक्ष उन्हें लेकर चल पड़ा। रत्ना देवी अपने महल में पहुँचते ही सब रहस्य समझ गई। पीछे तलवार लेकर दौड़ी। भय और प्रलोभन दोनों दिए, परन्तु जिनपालित ने उधर ध्यान भी नही दिया। जिनरक्षित उसके सौन्दर्य को देखकर और प्रिय वचनों को सुनकर ज्यों ही विमोहित हुआ कि अश्व की पीठ से गिर पड़ा। देवी ने उसे मार डाला। दृढ़ रहने पर जिनपालित अपने घर पहुँच गया।

ज्ञाता अ० ९/⊗

शास्त्रों के सागर में गहरी डुबकी लगाकर लेखक एक सुन्दर विचार-रत्न सामने लाया : "रत्ना देवी वासना के जाल का प्रतीक है, मनुष्य का लोभी मन उसमे फंस जाता है ! फलस्वरूप वह अपना निजत्व भूल जाता है। वासना की प्रतीक, रत्ना देवी से बचकर निकलने वाला साधक ही अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है। यह आसक्ति चाहे धन की हो, जन की हो, अथवा अपने देह की हो—काम-भोगो मे आसक्त मानव अपने हित या अहित का विचार करने मे कृत सकल्प नही हो पाता।"

—स०

देव हारा, मानव जीता !

पुराने युग की यह बात है।
उस पुराने युग की, । जहाँ
इतिहासकार अभी नहीं पहुँचा है। श्रद्धा के नेत्रों से ही जिस युग के प्रकाश की चमक को हम देख सके है, आज तक !

वह युग, भगवती मल्ली का युग था। चम्पा नगरी थी, जिसमें धन-श्रेष्ठी रहता था। वह श्रावक था, सत्यासत्य को जानता था। कर्तव्य-अकर्त्तव्य को समझता था। जैसा योग्य वह पिता था, वैसा ही दक्ष उसे पुत्र मिला था। नाम था, उसका अर्हन्नक। वह नीति में, रीति मे और धर्म में दक्ष था। व्यापार करने में वह कुशल था। और समुद्री व्यापार मे भी यशस्वी हो गया था।

◎... ....

एक बार अर्हन्नक समुद्री यात्रा कर रहा था। उसका जल-पोत सागर की तरुण तरंगों पर थिरकता चला जा रहा था। सहसा तूफान आ गया। जहाज हिलने-डुलने लगा।

स्वर्ग की देव-सभा में इन्द्र ने अपने मुख से अर्हन्नक के धर्ममय जीवन की प्रशंसा की। एक मिथ्यात्वी देव, प्रशंसा को सहन न कर परीक्षा लेने को चला आया। वह पिशाच का भयकर रूप बनाकर जहाज मे आ गया था—यह तूफान उसी का था।

अर्हन्नक निर्भय होकर जहाज मे बैठा रहा। मन में दृढ़ संकल्प किया :

"यदि उपसर्ग से बच गया, तो भक्त-पान ग्रहण करूँगा,

नही तो मेरे चारों आहारों का परित्याग है।" वह अभय होकर मन ही मन भगवान् की स्तुति करने लगा। अभय को भय कहाँ? वह स्थिर और दृढ़ था। देव अपने प्रयत्न में निष्फल हो गया। देव ने कहा :

"तुझे यथेच्छ धन दूंगा, परन्तु एक बार अपने धर्म को तू छोड़ दे, उसे मिथ्या और असत्य कह दे।" देव ने लोभ की भाषा में कहा। परन्तु अर्हन्नक ने विश्वास के साथ उत्तर दिया :

"कभी नही, कभी नही! आप, भले ही मुझे मार डालें! परन्तु मै अपने धर्म को कभी असत्य या मिथ्या नही कह सकता हूँ। धर्म तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रियतर है। धन क्षणिक है, धर्म शाश्वत है।" अर्हन्नक के स्वर में दृढ़ता थी।

अन्त में देव हार गया, मानव जीत गया। अर्हन्नक को भय और लोभ—दोनो नही जीत सके। देव प्रसन्न होकर बोला :

"मुझे क्षमा करो, अर्हन्नक! मैंने तुम्हे बड़ा कष्ट दिया। लो, यह कुण्डल की जोड़ी—मैं तुम्हें उपहार देता हूँ।"

अर्हन्नक के इन्कार करने पर भी देव दिव्य कुण्डल युगल देकर चला गया था। अर्हन्नक मिथिला मे आया, और उसने राजा कुम्भ की राजकुमारी मल्ली के लिए वह उपहार सविनय समर्पित कर दिया। वहाँ बहुत दिनों तक रहकर फिर वह अपने देश को लौटा। साथ मे प्रभूत धन संचय करके ले आया था।

अब उसने अपने जीवन की दिशा को बदला। धर्म की आराधना, साधना में विशेष रस लेने लगा। व्रत, नियम और धर्म का पालन करके अर्हन्नक देव-लोक में गया।

ज्ञाता अ० ८/७

धर्म में दृढ, स्थिर और अडिग रहने वाले के सामने देव हारता है। धर्म को प्राणो से भी प्रिय समझने वाले के जीवन में भय और लोभ नही होता। मानव की दृढता ने दैवी शक्ति को परास्त किया है अतीत मे, यह सत्य—'देव हारा और मानव जीता' से स्पष्ट हो चुका।

— सं०

था। निर्णय नहीं कर सका, यह क्या है ? यह कौन है ? यह क्यों हो रहा है ?

अपना पूरा बल लगाकर सर्पराज ने एक भयंकर फुपकार मारी। किन्तु योगी अब भी अचल, अटल खड़ा था। फिर पूरी शक्ति लगाकर प्रभु-चरणों मे तीव्र दंश मारा। योगी फिर भी स्थिर, अडिग ही खडा रहा। विष हार चुका था, अमृत मुस्करा रहा था। क्रोध हारा, क्षमा जीत गई !! विषधर पड़ा-पड़ा प्रभु की ओर देखता रहा। नहीं समझा वह—यह क्या और क्यों हो रहा है ? भगवान् ने शान्त स्वर में यों कहा :

"*संबुज्झह, किं न बुज्झह !*" चण्ड, जरा सभल ! देख अपने में अपने को। तू कौन था, क्या हो गया ?

मधुर वाणी का अमृत-पान करके वह मतवाला और मस्त हो गया। अपने आप मे वह डूबने लगा। डूबता रहा ! डूबता रहा !! डूबकर ले आया, वह अपने अन्तर जीवन-सागर में से :

"मैं भिक्षु था। शिष्य पर क्रोध किया। क्रोध कितना भयंकर तापकर, और दारुण भाव है।" जाति स्मरण ज्ञान की ज्योति से सारा अतीत प्रकाश से जगमगा उठा !

वह सोच रहा था : "मैं प्रतिबोध को पाया गया हूँ; भंते ! यह आपकी अपार कृपा को पामर कैसे भूलेगा ? आज से जीवन के अन्त-तक। क्षमा मेरा धर्म, शान्ति मेरा धर्म, अभय मेरा धर्म ! कुछ भी हो, मैं क्षमा रखूँगा। प्रतिशोध, क्षोभ और रोष बहुत किया—बहुत किया—अब न करूँगा।"

◎....... ....

लोगों ने पहले उसे मारा भी, पीटा भी। फिर सेवा और पूजा भी की। दुग्ध और घृत की सेवा चण्ड सर्प को उल्टी दारुण हुई।

चींटी आकर चिपटने लगी। वेदना, भयंकर होने लगी। फिर भी समता! शरीर से ममता जा रही थी, समता आ रही थी। जितना क्रोध था, उससे भी बढ़कर क्षमा और शान्ति और वह सर्प से देव बन गया।

नन्दी गा० ७९/७

फूल से सुगन्ध ही आएगी। अमृत से अमृत ही झरेगा। विष-वान विष-प्रयोग करता है। अमृतवान अमृत। विष हारता है और अमृत जीतता है। करुणा मूर्ति महावीर के अमृत ने चण्ड-कोशिक का विष समाप्त कर अमृत-पान करा ही तो दिया। 'विष हारा और अमृत जीत गया।'

— स०

शत्रु के लिए शस्त्र

एक बार कृष्ण, बलदेव, सत्यक और दारुक चारों मिलकर वन विहार को गए। वहीं पर सूर्य अस्त हो जाने पर एक वट-वृक्ष के नीचे चारों ठहर गए। सोचा : "विकट वन है, चारों श्रान्त है, नीद गहरी आएगी। किसी प्रकार का उपद्रव न हो, इसलिए एक-एक प्रहर तक प्रत्येक जागरण करे; और शेष सोते रहें।" सब सहमत हो गए।

दारुक ने कहा : "पहला याम मेरा। आप सब आनन्द से सो जाएँ, मैं प्रहरी हूँ।"

एक पिशाच आकर बोला : "मैं भूखा हूँ। बहुत दिनों से भोजन नही मिला। तेरे इन सोए हुए साथियो को मैं खा जाना चाहता हूँ।"

दारुक ने गर्जकर कहा : "मेरे बैठे, मेरे साथियों को खा जाना सुगम नही है।"

दोनों में युद्ध होने लगा। दारुक का क्रोध जैसे-जैसे बढता रहा, वैसे-वैसे पिशाच का बल भी बढ़ता रहा। दारुक थक चुका था। वह पिशाच को जीत नही सका।

दूसरे प्रहर में सत्यक, और तीसरे याम में बलदेव भी उठा। और वे भी अपने साथियों की प्राण-रक्षा के लिए जी-जान से पिशाच के साथ लड़ते रहे। परन्तु पिशाच को एक भी हरा नही सका।

चतुर्थ प्रहर मे कृष्ण उठा। उसने अपने सामने एक पिशाच को खड़े देखा। पिशाच बोला : "तेरे साथियों को खाने आया हूँ।

बहुत काल का भूखा हूँ। आज विधि वशात् यथेच्छ भोजन मिल गया है।"

कृष्ण ने निर्भय होकर कहा : "परन्तु मुझे जीते बिना तेरी इच्छा पूरी न होगी।"

कृष्ण बड़ा चतुर था। वह पिशाच और मनुष्य के बल से भली-भांति परिचित था। पिशाच युद्ध करने लगा। कृष्ण शान्त भाव से खड़ा कहता रहा : "शाबाश! तू बड़ा बलवान् है, तू योद्धा है! तू मल्ल है! तू बहादुर है!!"

पिशाच का बल क्षीण होने लगा। उसने अनुभव किया, जैसे कोई उसके बल को छीन रहा हो। वह लड़ता-लड़ता थक गया और भूमि पर गिर पड़ा।

प्रभात वेला में दारुक, सत्यक और बलदेव तीनों उठे, कृष्ण ने देखा ; सब के सब घायल हो रहे थे!

पूछा : "क्या बात है?"

तीनों ने कहा : "बात क्या है? यह सब तो वन विहार का पुरस्कार है। रात्रि में पिशाच से युद्ध किया था, तभी तो बच गए—हम सब?"

कृष्ण ने मुस्कान भर कर कहा : "बन्धुओ, युद्ध तो पिशाच से मैंने भी किया था, पर मैं घायल नहीं हुआ। वह स्वयं ही घायल हुआ पड़ा है।"

तीनों ने देखा तो वस्तुतः कुछ दूरी पर घायल पिशाच भूमि पर अचेत पड़ा था। तीनों विस्मय के साथ बोले : "यह क्या बात है?"

"बात कुछ भी नहीं है! पिशाच के साथ लड़ने की एक कला होती है। वह तुम्हारे पास नहीं थी। मैं पिशाच से लड़ा नहीं, शान्त भाव से खड़ा रहा। वह उछल-कूद मचाता रहा। मैं उसके

बल की प्रशंसा करता रहा। प्रशंसा का शस्त्र शत्रु के क्रोध को जीतने का अचूक साधन है। ! क्रोध को जीतने के लिए शान्ति की तलवार चाहिए।" कृष्ण ने कहा।

उ० अ० २, गा० ३१।⊗

क्रोध एक पिशाच है। क्रोध के बदले में क्रोध करने से उसका बल बढता है। शान्ति से उसका बल क्षीण होता है और अपना बढता है। शत्रु को जीतने की सबसे बड़ी और पहली कला यही है। क्रोध-रूपी पिशाच को शान्ति से ही जीता जा सकता है। क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिए यह कितना सुन्दर और उत्कृष्ट आध्यात्मिक समाधान है!

— सं०

पश्चात्ताप की आग !

जीव की जैसी परिणति होती है, उसका जीवन भी उसी ढांचे में ढलता है। असत्कर्म तो हेय होता ही है, परन्तु सत्कर्म की आसक्ति भी बड़ी भयंकर होती है, जिसको दारुण फल से विना भोगे छुटकारा नही मिल पाता।

राजा श्रेणिक की राजधानी राजगृह में श्रमण भगवान् महावीर पधारे और गुणशीलक उद्यान में विराजित हुए। एक दर्दुर नाम वाला तेजस्वी देव दर्शन को आया। देव के दिव्य तेज को देखकर, गणधर गौतम ने पूछा : "भंते दर्दुर को यह अद्‌भुत तेज कैसे मिला ?"

भगवान् ने मधुर स्वर में कहा : "गौतम, एक बार मैं यहाँ पर आया। यहाँ का समृद्ध, सुखी और व्यवहार चतुर मणिकार, नन्द मेरा प्रवचन सुनकर सन्तुष्ट हुआ और उसने श्रावक व्रत स्वीकृत किए। वह धर्म-साधना करता रहा। कालान्तर में वह असयत और आसक्त मनुष्यों के संसर्ग में रहने के कारण धर्म में शिथिल हो गया ....…!"

"एक बार ज्येष्ठ मास में उसने निर्जल तेला किया। पौषधशाला में वह तप करने बैठ तो गया, परन्तु अत्यन्त तृषा एवं अत्यन्त क्षुधा से पीड़ित हुआ और समभाव नही रख सका। उसके मन में विचार आया :

"तृषा कितनी भयंकर पीड़ा है। क्यों न मैं लोकहित के लिए राजगृह से बाहर एक सुन्दर पुष्करिणी बना दूं, जिसका जल

पान कर जन, शान्ति और सुख का अनुभव कर सकें।"

अपने विचार को साकार रूप देने में संपन्न व्यक्ति को विलम्ब नही लगता। मणिकार नन्द ने एक विशाल एवं विस्तृत पुष्करिणी तैयार करा ली, जिसके चारों ओर सघन वृक्षों वाले चार वन-खण्ड थे। पूर्व के वन-खण्ड में चित्र-शाला, दक्षिण मे पाक-शाला, पश्चिम में औषध-शाला और उत्तर में अलंकार-शाला बनवादी। दूर-दूर के यात्री वहाँ आकर सुख पाते थे। चारों ओर नन्द का यश फैल गया। राजगृह के घर-घर में नन्द की प्रशंसा के गीत गाए जाने लगे।

अपनी प्रशंसा और यश को पचाना कोई सरल काम नहीं है। प्रशसा वह भूख है, जिसकी पूर्ति जीवन भर नही हो सकती। मनुष्य इसमें अपनी राह भूल जाता है।

कालान्तर में मणिकार नन्द सोलह महारोगों से पीड़ित हो गया। चिकित्सा कराने पर भी वह स्वस्थ नही हो सका। रोग दशा में भी उसका मन पुष्करिणी में अटका हुआ था। अपनी तीव्र आसक्ति के कारण ही वह मरकर स्व-निर्मित पुष्करिणी में मेंढक बन गया। पुष्करिणी में आने-जाने वाले लोगो के मुख से अपनी प्रशसा सुनकर वह गम्भीर विचार करता। उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। अपनी तीव्र आसक्ति के कारण होने वाली दुर्दशा पर उसे पश्चात्ताप होने लगा।

"एक बार मैं फिर राजगृह में आया। परिवार सहित राजा श्रेणिक वन्दन को आया। मेंढक ने भी जल भरने को और स्नान करने को आने वाले लोगों से सुना—मैं यहाँ आया हूँ। उसने भी दर्शन और वन्दन का सकल्प किया। मार्ग मे फुदकता चल रहा था, कि घोड़े के पैर के नीचे कुचलने से घायल हो गया और

चलने की शक्ति न रहने से वहीं से उसने मुझ को भाव-वन्दन कर लिया। उसे अपनी आसक्ति पर बड़ा पश्चात्ताप था। पश्चात्ताप की आग में दोष जलकर भस्म हो जाते है। वह देह त्याग कर यह दर्दुर देव बना है।"

— ज्ञाता अ० १३/८

कार्य का अच्छापन और बुरापन करने वाले की भावना पर आधारित रहता है। आसक्तिमय शुभ-कर्म भी अहितकर हो सकता है। लोक-सेवा पाप नही है, दान करना पाप नही हैं। पुण्य कर्म भी पाप बन सकता है, यदि वह आसक्ति से किया गया हो तो। आसक्ति का विष शुभ को भी अशुभ बना देता है। लेखक यह कहना चाहता है कि शुभ कर्म करके भी फल मे आसक्ति मत रखो। कर्म कुशलता पूर्वक करना चाहिए। बस, इतना ही पर्याप्त है।

— सं०

सत्य असीम है!

यह कहानी उस युग की है, जब वनों में रहकर तापस घोर तपस्या किया करते थे। तापस तपस्वी तो होते ही थे, साथ ही विद्वान् भी होते थे। प्राचीन भारतीय साहित्य, तापसों की तपस्याओं से भरा पड़ा है।

भगवान् महावीर के युग में अम्बड एक प्रसिद्ध तापस था, जिसे कहीं पर परिव्राजक कहा गया, और कहीं पर संन्यासी कहा गया है। अम्बड भगवान् महावीर की साधना से अत्यन्त प्रभावित था। वह भगवान् के प्रति गहरी निष्ठा रखता था। संन्यासी के वेष में रहकर भी उसने भगवान् महावीर से बारह व्रत अंगीकार किए थे। ब्रह्मचर्य-व्रत को वह दृढ़ता से पालता था, और अपने शिष्यों से भी पलवाता था। अम्बड के सात-सौ शिष्य थे, वे भी अपने गुरु जैसी ही साधना करते थे।

एक बार वह राजगृही जाने लगा, तो भगवान् से पूछा : "मैं राजगृही जा रहा हूँ, कोई सेवा हो तो कृपा कीजिए।"

भगवान् ने नाग गाथापति की पत्नी सुलसा को धर्म-सन्देश कहलाया। अम्बड ने सोचा : "सुलसा अपने धर्म में कितनी दृढ़ है ? परीक्षा करके देखूँ !"

....

उसने अनेक रूप बनाए, भगवान् का रूप भी बनाया, परन्तु सुलसा ने उसे नमस्कार नहीं किया। सुलसा की श्रद्धा से वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

अम्बड ने घोर तपस्या की थी, कठोर साधना की थी, व्रतों की सम्यक् आराधना की थी। इस कारण उसे वैक्रिय लब्धि और अवधि-ज्ञान भी प्राप्त हो गया था। भगवान् महावीर के धर्म में अम्बड को अत्यन्त श्रद्धा थी। जैसी श्रद्धा अम्बड संन्यासी की थी, वैसी ही श्रद्धा उसके सात-सौ शिष्यों की भी थी।

... ...

एक बार अम्बड के सात-सौ शिष्य एक साथ कंपिलपुर से गंगा के किनारे-किनारे पुरिमताल नगर जा रहे थे। भयंकर ग्रीष्म था, भयंकर आतप बढ रहा था, आकाश और धरती जल रहे थे। झुलसाने वाली लू चल रही थी। प्यास लगी, कंठ सूखने लगे। गंगा का निर्मल जल बह रहा था, परन्तु बिना किसी गृहस्थ की आज्ञा के वे पानी नही पी सकते थे। किसी के आने की प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु कोई नही आया। शीतल जल तो वे लेते थे. पर आज्ञा बिना कैसे ले? अस्तेय व्रत का वे इतनी कठोरता पूर्वक पालन करते थे।

स्थिति विकट होती जा रही थी! तृषा का वेग चरम सीमा पर पहुँच रहा था!! वे सब के सब भूमि का शोधन करके गंगा की रेत में अनशन करके लेट गए!!! ऊपर से सूर्य तपा रहा था! नीचे से रेती जला रही थी!! फिर भी वे शान्त, प्रशान्त और उपशान्त थे!!! अरिहन्त, महावीर को और अम्बड को उन्होंने भाव-वन्दन किया। अपने व्रतों की आलोचना की। जीवन का शोधन कर लिया और काल करके वे ब्रह्मदेव लोक में गए। कालान्तर में अम्बड भी काल करके पाँचवे ब्रह्मलोक में ही गया। धर्म के प्रति कितनी दृढ़ आस्था थी, उनकी!

पाँचवे देवलोक में पहुँचकर अम्बड महाविदेह में दृढ़ प्रतिज्ञ नाम से सिद्ध होगा। सम्पन्न कुल में जन्म लेकर भी और माता-

पिता द्वारा भोगों की ओर आकर्षित करने पर भी वह भोगों में लिप्त नहीं होगा। जैसे कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से परिलिप्त नही होता, वैसे ही दृढ़ प्रतिज्ञ भी संसार के काम-भोगों में लिप्त नहीं होगा।

संसार का परित्याग करके वह दीक्षित होगा। कठोर साधना से, उग्र तप से, संयम से वह अपनी आत्मा को भावित करेगा। अन्त में एक मास की संलेखना कर वह सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा।

— उववाई सू०/ ⊗

जैन-धर्म वेष में बद्ध नहीं है, वह हृदयाकाश के अनन्ताकाश मे उड़ान भरता है। लेखक कहता है कि वेष की सीमा को जैन-धर्म नही मानता। वेष धर्म नही, ढकोसला है। आस्था सत्य है, श्रद्धा शास्वत है। सम्प्रदायवाद में बन्दी-लोग सत्य दर्शन की दृष्टि लेकर चलें तो सब धर्मों का आदर करना सीख सकते हैं। सत्य तो सभी धर्मों तथा तापसों में है; और वह असीम है।

— सं०

जो आज पाया था !

भास्कर का भास्वर प्रकाश ज्यों ही धरा-तल का संस्पर्श करता है, त्यों ही मुकुलित कमल खिल उठते है। नभोमण्डल में जब कारे-कजरारे मेघों का गंभीर गर्जन होता है, तब मयूर अपनी कुहुक रोक नही सकता है। महापुरुष के पधारने पर भक्त अपने घरों में कैसे वन्द रह सकता है ? उसका मन अपने आराध्य के चरणों में लोट जाने को अधीर हो उठता है।

◎... ....

भगवान् नेमिनाथ द्वारिका नगरी के बाहर उपवन में विराजित हुए। श्रीकृष्ण और महारानी पद्मावती वन्दन करने और धर्म-देशना सुनने के लिए आए। भगवान् की मधुर वाणी के अमृत-पान से परितृप्ति का सुखद अनुभव विरले ही भाग्यवानों को मिलता है। पद्मावती वापस लौट गई। परन्तु श्रीकृष्ण वहीं बैठे रहे। भगवान् से पूछने लगे :

"भंते ! देवलोक के तुल्य इस सुन्दर नगरी द्वारिका का विनाश किसी निमित्त से होने वाला तो नहीं है ?" श्रीकृष्ण, यादव कुमारों के सुरा एव सुन्दरी के विलास से सशकित हो हो चुके थे। समझाने-बुझाने के समस्त प्रयत्न निष्फल हो चुके थे। तीर्थंकर महावीर, श्रीकृष्ण के मन की शंका को जान गए थे।

भगवान् बोले : "कृष्ण ! संसार में एक भी वस्तु शाश्वत नही है, आत्मा को छोड़कर ! द्वारिका नगरी का विनाश

वाला है और वह विनाश यादव कुमारों द्वारा प्रताड़ित द्वैपायन ऋषि के कोप से होगा।"

बुद्धिमान अपना अपमान सह लेता है, परन्तु अपने ही सामने अपनी कृति की वह अवगणना नही देख सकता। श्रीकृष्ण ने अतिस्वर से पूछा :

"क्या मैं भिक्षु बन सकूँगा, भंते!"

"नही, कृष्ण!"

"भंते! ऐसा क्यों नही होगा ?"

भगवान् ने धीर स्वर से कहा : "आज तक के मानव इतिहास में किसी भी वासुदेव ने प्रव्रज्या नही ली, ले भी नही सकता, और ले भी नही सकेगा। यह ससार का शाश्वत नियम है—कृष्ण!"

मनुष्य के मन में अपने भविष्य की गहरी चिन्ता छिपी रहती है। श्रीकृष्ण ने विनम्र-भाव से फिर पूछा :

"भंते! यहाँ से जीवन का अन्त हो जाने पर मैं कहाँ और किस रूप में रह सकूँगा ?"

भगवान् ने सहज भाव में कहा :

"कृष्ण! यह सुन्दर द्वारिका जल रही होगी, यहाँ के सुरा और सुन्दरी में भान भूले लोग अग्निकुमार की आग में भस्म हो रहे होंगे, तब तुम, बलभद्र और तुम्हारे माता-पिता द्वारिका से निकलकर पाण्डव-मथुरा की ओर जाते-जाते मार्ग में वसुदेव और देवकी के जीवन का अन्त हो जाने पर, कोशाम्बी वन मे वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिला पर लेटे हुए तुम्हारे पैर में जराकुमार बाण मारेगा, जिससे तुम्हारे जीवन का अन्त हो जायगा और तुम

वहाँ से तीसरी पृथ्वी में जीवन धारण करोगे। बलभद्र, जो तुम्हारे लिए जल लेने जाएगा, वह भी उस समय तुम्हारे पास न होगा।

अपना दुःखद भविष्य सुनकर या जानकर किसको चिन्ता न होगी ? कृष्ण चिन्तातुर हो गए। उनको गहरे चिन्तन मे देखकर भगवान् नेमिनाथ ने आशा का संबल देते हुए कहा :

"कृष्ण ! तुम इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? तुम्हारा अगला जीवन सुखद और सुन्दर है।"

"यह कैसे भते !" कृष्ण ने उत्कण्ठा से पूछा।

"कृष्ण ! शतद्वार नगर में एक अन्तिम तीर्थंकर होगा। वह तुम ही हो !" भगवान् ने कहा।

अपना उज्ज्वल भविष्य सुनकर कृष्ण हर्ष-विभोर हो गए। प्रमोदमय अभिनय करने लगे। अपनी पूरी शक्ति से उन्होंने सिंह-नाद किया। फिर भगवान् को वन्दन करके द्वारिका की ओर चल पड़े। कृष्ण ने जो आज पाया, वह कभी नही पाया होगा।

—अन्तकृत् अंग-सूत्र, वर्ग ५, अ० १। ®

द्वारिका के कृष्ण ने जब परम प्रभु नेमिनाथ से अपने भविष्य के सम्बन्ध मे प्रश्न किया तो महाश्रमण नेमि से यथा-तथ्य समाधान पा मन विषाद से भर गया ! पर जो शास्वत है, सत्य है, वह होगा ही !! मनुष्य आशा के बल पर ही तो जीता है ! बन्दी को जिस दिन भी मुक्ति की सूचना मिलती है, उसे कितनी प्रसन्नता होती है ! कृष्ण को उज्ज्वल भविष्य की रेखा मात्र नेमिनाथ से मिली थी। पर इतने मात्र से ही उसका मन कितना प्रसन्नता से भर गया होगा ?

—स०

सेवा का आदर्श !

◎————————

द्वारिका के प्रशस्त राजमार्ग से श्रीकृष्ण अपने गजराज पर बैठकर भगवान् नेमिनाथ के दर्शन और वन्दना को जा रहे थे । साथ मे अंग-रक्षक सेना तथा अन्य बहुत से विशिष्ट जन भी थे।

राजमार्ग के समीप ही एक वृद्ध पुरुष को देखा : "देह से जर्जरित है, हाथ-पैर कॉप रहे है, चलते-फिरते देह का संतुलन भी ठीक नही रहता है। फिर भी वह अपने कपित हाथों से एक-एक ईट उठाकर अपने घर के अन्दर ले जा रहा है । वह अपने जीर्ण भवन को फिर से खड़ा करने के प्रयत्न में है।"

◎... ....

श्रीकृष्ण के हृदय की दया-भावना सहयोग के रूप में फूट पड़ी। दीन पर दया करना, हीन को उभारना—महापुरुषों का सहज स्वभाव है। नवनीत, जैसे आग के ताप से पिघल उठता है, वैसे दया-प्रवीण सज्जन हृदय भी दु.खी के दुःख को देखकर पिघल जाता है। दया, सेवा में परिणत हो जाती है। सहानुभूति और सद्भाव, मानवता की आधार-शिला बन जाती है।

श्रीकृष्ण हाथी से नीचे उतरे, अपने अनुचरों को आदेश न देकर स्वय अपने हाथ से एक ईट उठाई और वृद्ध के घर के अन्दर डाल दी।

युग-पुरुष जिधर देखने लगता है, उधर हजारों की दृष्टि टिक जाती है। जिधर वह अपने दो डग रखता है, उधर हजारों कदम

चल पड़ते हैं। जिधर एक हाथ बढ गया, उधर हजारों हाथ काम करने को बढ जाते है। श्रीकृष्ण की सेना ने और साथी जनों ने देखते ही देखते वृद्ध की सारी ईंटे अन्दर डाल दी।

वृद्ध, श्रीकृष्ण की करुणा से प्रभावित था और श्रीकृष्ण उसकी सेवा करके आज अत्यधिक प्रसन्न थे।

—अन्तकृत् अंग-सूत्र, वर्ग ३, अ० ८।⊗

गोपियो के साथ आनन्द विहार करने वाले 'राग के मूल बिन्दु कृष्ण' का चित्रण जैन आगम ग्रंथो मे नही है। अध्यात्म के प्रतिनिधि ग्रंथो मे लीला-विहार तो स्थान पा ही नही सकता, यह तो सत्य ही है। "कृष्ण सदय और करुणा से ओत-प्रोत थे; यह जैन दृष्टिकोण है!" इसे भी इतिहास का ही सत्य कहा जाता है। कृष्ण का लीला-विहारी रूप भी ऐतिहासिक माना जाता है। क्या सत्य था! क्या सत्य है! विचारों का मैदान लम्बा है। प्रमाण दोनों ओर विपुल है! पर सत्य तो जिस दिल को जो छू जाय, वही सत्य है!!

— सं०

धनी बनो, धन-लोभी नहीं !

◎———————————————

यह कहानी उस युग की है, जबकि राजा श्रेणिक राजगृह में राज्य करता था। राजा श्रेणिक तो प्रजावत्सल था ही, रानी चेलना भी कोमल स्वभाव की रानी थी। उसकी अनुभूति व्यापक और विशाल थी।

◎ ....

वर्षा का मौसस था। भादवे की काली अधियारी रात, और मूसलाधार वर्षा हो रही थी। रानी चेलना जाग उठी, और महल के पिछले भाग की खिड़की में जा बैठी। आकाश मे विद्यु त जब तब चमकती रहती। विद्यु त के प्रकाश में उसने देखा, वेगवती नदी में से कोई कुछ निकाल रहा है! फिर जरा ध्यान से देखा, तो ज्ञात कर सकी, कि कोई पुरुष बहते पानी में से लकड़ी निकाल-निकाल कर किनारे डाल रहा है। पुरुष की निर्धनता पर रानी चेलना को गहरी चिन्ता हो आई।

प्रभात वेला मे सजन जागे तो रानी ने सबसे पहले रात बीती घटना कह सुनाई; और कहा: "आपके राज्य में इतने दु खी और दरिद्र मनुष्य भी रहते है, आश्चर्य है।"

राजा ने रानी को सान्त्वना देते हुए कहा: "मैं इसकी जांच करूंगा और उस व्यक्ति को राज्य-कोष से योग्य सहायता भी दूंगा। राजा के आदेश से बड़ी छान-बीन के बाद उस व्यक्ति को राज-सभा में उपस्थित किया गया।

व्यक्ति ने अपना परिचय देते हुए कहा: "मैं इसी राजगृही

नगरी का वासी हूँ। नाम मेरा मम्मण सेठ है। मेरे पास एक बैल तो है, दूसरे बैल की प्राप्ति के लिए इधर-उधर से मेहनत करके धन एकत्रित कर रहा हूँ।"

राजा ने सोचा : "बड़ा ही गरीब है, यह व्यक्ति। मेरी गोशाला में बहुत-से बैल है। राज्य सम्पत्ति मे प्रजा-जन का पूरा-पूरा अधिकार है।"

गोशाला के अध्यक्ष को राजा ने आदेश दिया : "इसकी मन-पसन्द का एक बैल इसे दे दो।" मम्मण सेठ गोशाला मे गया, पर एक भी बैल मन को नही भाया।

राजा ने पूछा : "क्यों क्या बात है ?"

मम्मण बोला : "महाराज, मुझे तो मेरी जोड़ी का बैल चाहिए।"

"तुम्हारा बैल कैसा है ?" राजा ने पूछा।

मम्मण ने विनय युक्त शब्दों मे कहा : "मेरे घर पर पधारे, महाराज ! क्योंकि वह मेरा बैल यहाँ नही आ सकता।"

मम्मण सेठ के साथ राजा श्रेणिक उसके घर पहुँचे। बड़ी हवेली थी, पर खसता हालत में। हवेली में प्रवेश करने के बाद मम्मण महाराज को तलघर में ले गया, जहाँ वर्षों से शायद झाड़ू भी नही दी गई थी। जैसे-तैसे राजा वहाँ पहुँचा। चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा। राजा मन में सोचने लगा : "किस पागल के पाले पड़ गया हूँ !"

परन्तु, मम्मण ने ज्यों ही एक वस्तु पर से फटी गुदड़ी उठाई, कि समूचा तलघर प्रकाश से भर गया।

सेठ ने कहा : "यह है, महाराज मुझ गरीब का बैल !"

राजा ने ध्यान से देखा : "स्वर्ण का बैल है, जिसमे हीरे-

पन्ने और माणक्य-मोती जडे हुए है।"

राजा के विस्मय का पार नही रहा। राजा विचारने लगा : "इतनी सम्पत्ति होते हुए भी इतना गरीब बना है, कि भयकर काल-रात्रि मे जाकर नदी के वेग से लकड़ियाँ इकट्ठी करता रहता है?"

◎ ....

मम्मरण सेठ राजा से कहने लगा : "राजन्! यह बैल ९९ करोड की लागत का है। मेरी अभिलाषा है, कि इस जोड़ी का दूसरा बैल भी ला सकूँ तो अपने आपको धन्य समझूँगा। इस बुढ़ापे में भी इतना श्रम इसीलिए करता हूँ।"

◎............

राजा श्रेणिक ने एक बार भगवान् महावीर से प्रश्न किया : "भंते! मम्मरण सेठ के पास इतना विपुल धन है, फिर भी सुखी क्यों नही? न स्वयं खाता है, और न दान-पुण्य ही कर सकता है?"

भगवान् ने कहा : "देवानुप्रिय! धन दो प्रकार से प्राप्त होता है—*पुण्यानुबन्धी पुण्य से, और पापानुबन्धी पुण्य से।"*

जिस धन को पाकर मनुष्य के मन में शुभ-कार्य करने का सकल्प जागे, वह पहला; और जिस धन को पाकर मनुष्य के मन में शुभ-कार्य करने का सकल्प या विचार न उठे, वह दूसरा! मम्मरण सेठ के पास धन तो बहुत है, पर वह पाप का धन होने से किसी शुभ-कार्य में खर्च नही कर सकता। इस प्रकार का धन-मोह मनुष्य का पतन करता है। रात-दिन धन में आसक्ति बनी रहने के कारण ऐसा मनुष्य कोई भी शुभ काम करने में सफल नही होता।

"गृहस्थ जीवन के लिए धन आवश्यक तो है, पर वह जीवन

का साध्य न होकर साधन ही रहना चाहिए। जीवन के लिए धन है, न कि धन के लिए जीवन! मम्मण सेठ इतना बड़ा धनी होकर भी जीवन भर दुःखी रहा और अन्त में नरक में भी गया। धनमोह का यही परिणाम होता है।

⊗ ⊗

मनुष्य की अकांक्षाएं आकाश को बांहो में बांधना चाहती हैं और जमीन को पैरों से रोंध डालना! मम्मण न तो आकाश को बांहो मे भर सका और न पृथ्वी को रोंध सका यानी पृथ्वी पर बड़ा बन कर ही जी सका! अत: मनुष्य धनी बने या धन-लोभी? —कथानक विचार करने को बाध्य कर रहा है।

— सं०

अमात्य की बात !

कोई वस्तु न अपने आप मे भली है,

और न बुरी। जैसा निमित्त मिलता है; वस्तु वैसी ही बन जाती है। वस्तु मात्र परिणमनशील है।

चम्पा नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। धारिणी रानी थी, अदीनशत्रु राजकुमार था। सुबुद्धि उसके अमात्य का नाम था। वह एक विचारशील श्रावक था और वस्तु के स्वरूप को जानता था।

नगरी के बाहर एक खाई थी, जिसमें गन्दा पानी भरा था। राजा एक दिन उधर से निकला और उस सडे जल को देखकर सुबुद्धि से बोला : "यह पानी कितना गन्दा है ?"

अमात्य सुबुद्धि ने विनीत भाव से कहा : "राजन ! यह तो वस्तु का स्वभाव है, कि उसमें परिणमन होता ही रहता है। जो आज अच्छी है, वह कल बुरी हो सकती है, और जो आज बुरी है, वह कल अच्छी बन सकती है।"

राजा ने यह बात सुनकर फिर कहा :

"यह तुम्हारा भ्रम है। जो अच्छा है, वह अच्छा ही रहेगा, और जो बुरा है, वह बुरा ही रहेगा। क्या यह गन्दा पानी भी कभी सुवासित हो सकता है ?"

सुबुद्धि ने यह बात सुनी और अपने मन में रख ली। बुद्धिमान् मनुष्य बोलता कम है, और करता अधिक।

अमात्य सुबुद्धि ने खाई का गन्दा पानी मंगाया और शोधन

प्रक्रिया से एक सप्ताह भर में उसे शुद्ध, निर्मल और स्वच्छ बना लिया। उसमे सुगंधित द्रव्य डालकर उसे सुरभित भी बना डाला।

एक बार राजा अपने सहचरों और परिजनों के साथ भोजन कर रहा था। अमात्य ने जल भरने वाले के हाथ वह पानी भेज दिया। जल पीकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए। बोले : "यह पानी बड़ा शीतल, मधुर और सुरभित है। कहाँ से आया, और कौन लाया? यह तो उदक रत्न है।"

दास ने विनम्र होकर कहा : "यह पानी अमात्य सुबुद्धि ने आपके लिए ही भेजा था।"

कालान्तर में राजा ने अमात्य से पूछा : "इतना शीतल और मधुर एवं सुरभित जल कहाँ से आया?"

सुबुद्धि ने विनीत स्वर में कहा : "यह पानी उसी खाई का है राजन।"

राजा को विश्वास नहीं आया। उसने स्वयं भी उसी प्रक्रिया से जल का शोधन करके देखा तो अमात्य की बात पर विश्वास करना पड़ा।

राजा इस तथ्य को समझ गया, कि वस्तु परिणमनशील है। निमित्त मिलने पर वह भली और बुरी होती रहती है।

⊗ ⊗

काल के धक्को से भी वस्तु या व्यक्ति में परिवर्तन आता है। जो सत्य आज गले में अटक रहा है, वही कल अमृत बन कर गले से उतर जाता है। मनुष्य की बुद्धि आज नही तो कल, सत्य को स्वीकार करेगी। सत्य आज नही तो कल प्रकट होगा ही। सत्य छुप नहीं सकता। सत्य के द्वार कभी न कभी खुलते ही हैं।

— सं०

मंथन का मोती !

यह बात आजकल की नहीं, महाभारत-काल की है। द्रोणाचार्य के गुरुकुल में कौरव और पाण्डव अध्ययन के लिए आए थे। कौरवों में दुर्योधन बड़ा था और पाण्डवों में युधिष्ठिर। दुर्योधन बचपन से ही बड़ा अभिमानी एवं क्रोधी था और युधिष्ठिर विनम्र एवं शान्त। युधिष्ठिर, कौरव और पाण्डव दोनों को स्नेह-भरी दृष्टि से देखता था, किन्तु दुर्योधन मे यह बात नही थी।

शिक्षा आरम्भ हुई। गुरुजी सब को एक-साथ पढ़ाने लगे। पहले दिन सब को वर्णमाला की शिक्षा दी। दूसरे दिन का पाठ था—"*सदा सत्य बोलो, क्रोध मत करो।*" गुरु ने पाठ दिया, शिष्य याद करने लगे।

◎............

यह लो, पाठशाला की छुट्टी हो गई। अन्य राजकुमार खेल-कूद में मस्त हैं। पर, युधिष्ठिर एक ओर बैठा अपना वही पाठ याद कर रहा है—"सदा सत्य बोलो, क्रोध मत करो"; "सदा सत्य बोलो, क्रोध मत करो!" लो, सूर्य देव अस्ताचल पर आ पहुँचे हैं। गुरुकुल के छात्र और अध्यापक सब संध्या करने लगे हैं। युधिष्ठिर भी उठा और स्नान करके संध्या करने लगा।

सारा संसार निद्रा के अन्धकार में डूब गया। आश्रम के रहने वाले अपनी-अपनी कुटियों में सोने चल दिये हैं। पर, युधिष्ठिर? युधिष्ठिर तो अपना वही पाठ याद कर रहा है:

"*सदा सत्य बोलो*", "*क्रोध मत करो !*" आज युधिष्ठिर को नीद नही आ रही है। वह सोचता है : "कल गुरुदेव पूछेगे पाठ याद हो गया ? तो क्या उत्तर दूँगा ? यह पाठ तो बडा कठिन है, यह एक या दो दिन मे याद हो सकेगा, नही होगा ! यह तो कई वर्षो का पाठ लगता है !"

◎ ... .

प्रभात का सुहावना समय है। सूर्य की सुनहली प्रभा स्वर्ण-सी विकीर्ण हो रही है। आश्रम के चारो ओर वृक्षों के चिकने-चिकने कुसुम कोमल किसलयों पर अद्वितीय चमक परिव्याप्त हो रही है। यह लो, पाठशाला में सब छात्र आ पहुँचे है।

सम्मुख गुरुदेव विराजमान है। वे सब को स्नेह में भीगे नेत्रों से देख रहे है। कुछ क्षणों बाद मधुर स्वर से गुरुदेव ने पूछा :

"क्यों ! कल का पाठ याद हो गया ? सरल ही तो था !"

दुर्योधन—हाँ, गुरु देव ! याद कर लिया।

कर्ण— मुझे भी याद है।

दु शासन—मैंने तो कल ही कर लिया था।

भीम—लीजिए, मैं अभी सुनाता हूँ !

भीम की बात पर आचार्य जी मुस्कराये। सब साथी भी हंसने लगे। और गुरु को अपने शिष्यों पर गर्व था।

युधिष्ठिर सिर नीचा किए चुप-चाप बैठा था। वह अपने ध्यान में मग्न था। उसे कुछ पता नहीं, कहाँ क्या हो रहा है। वह तो अपने उसी पाठ का चिन्तन और मनन कर रहा था। युधिष्ठिर को चुप-चाप बैठा देखकर आचार्य जी ने कहा :

"वत्स, युधिष्ठिर ! तुम चुप क्यों हो ? क्या पाठ याद नही है ?"

युधिष्ठिर—हाँ गुरुदेव ! यही सत्य है, मुझे पाठ याद नहीं है।

आचार्य—है, क्या कहा, याद नहीं ! बस, दो वाक्य और वे भी याद नही ?

युधिष्ठिर—हाँ गुरुदेव, याद नही है ! बहुत परिश्रम किया, पर नही हुए।

आचार्य—इनको कैसे याद हो गये ?

युधिष्ठिर—गुरुदेव, इनकी ये जानें ! मुझे तो याद नही हुआ।

आचार्य जी क्रोधित हो उठे। छडी हाथ में ली और युधिष्ठिर को मारने लगे।

तमाचे और छड़ी—दोनों का प्रयोग हुआ। मारते-मारते युधिष्ठिर का मुँह लाल कर दिया, पर युधिष्ठिर कुछ न बोला। सिर नीचा किए सब कुछ सहता रहा ! सुनता रहा !! उसके अन्य भाई इस क्षमा पर, सहिष्णुता पर दंग थे !

दुर्योधन सोच रहा था :"यदि इस प्रकार मेरे एक भी तमाचा लगा होता, तो गुरूजी को मजा चखा देता। बताता कि किसी को मारने का क्या परिणाम होता है। हम राजकुमार है, फिर हमें मारने वाला यहाँ है कौन ?"

०............

एक दिन बाबा भीष्म पितामह बच्चों की देख-रेख के लिए गुरुकुल में आ पहुँचे। सब राजकुमार '*बाबा आए, बाबा आए*', कहते हुए उनकी प्यार भरी गोद मे जा बैठे। पितामह का सब को समान स्नेह मिला। कुशल-मंगल के बाद पितामह ने पूछा :

"क्यों आचार्य जी, सब बच्चे अच्छी तरह पढ़ते है न ?"

आचार्य जी—"हाँ, सब ही होनहार है। जितना पढाता हूँ, याद कर लेते है, पर युधिष्ठिर पढने में मन नही लगाता। आज चौथा दिन है, इससे दो वाक्य भी याद नही हुए!"

पितामह ने युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए कहा: "वत्स, आचार्य जी क्या कहते है? तुम सबसे बड़े होकर भी ठीक से मन लगाकर नही पढते हो। देखो, यह अवस्था तुम्हारे पढने-लिखने की है। विद्या अच्छी तरह पढोगे तो विद्वान बन जाओगे, सब लोग तुम्हारा आदर-सत्कार किया करेंगे। बेटा, संसार मे विद्वान की बड़ी कद्र है। समझे, मन लगाकर पढ़ा करो।"

विनम्र भाव से युधिष्ठिर ने कहा: "बाबा जी! आचार्य जी से पूछ लीजिए, मैंने पाठ का दूसरा हिस्सा *'क्रोध मत करो'* तो कल सुना दिया है। पर, उसका पहला हिस्सा *'सदा सत्य बोलो'* अभी याद नही हुआ। जब तक मैं अपनी वाणी पर विजय न पा लूँ, तब तक कैसे कहूँ कि पूरा पाठ याद कर लिया?"

युधिष्ठिर की इस तथ्य भरी वाणी को सुनकर द्रोणाचार्य चौक उठे। पितामह और आचार्य दोनो गद्-गद् हो गये। उन्हें यह मालूम नही था कि युधिष्ठिर कितना विचारशील है। ज्ञानसिन्धु के ऊपर ही ऊपर तैरने वालों की संख्या बहुत है, परन्तु जिसको द्रोणाचार्य जी निर्बुद्धि समझने की भूल कर रहे थे, वही युधिष्ठिर इस संसार में विद्या से, आचरण से और तप से खूब ही चमका। उसका यह बुद्धि-कौशल देखकर द्रोणाचार्य जी ने कहा था: "भविष्य में यह बालक मेरी समग्र आशाओं को पूरी करेगा। स्वयं चमकेगा और मेरा भी नाम चमका देगा।"

आज विद्यार्थियों में असंख्य दुर्योधन मिल सकते है पर, युधिष्ठिर कितने मिलेंगे?

⊗ ⊗

किताबो के बोझ से आज का विद्यार्थी इतना अशक्त एवं शक्ति-हीन हो गया है कि वह विद्यार्जन कर, अमुक प्रकार के कर्म की कैद मे बन्द पडा-पड़ा जीवन गला देता है। जो विद्या आध्यात्मिक और भौतिक—दोनो प्रकार की मुक्ति देने वाली थी, उसका उपयोग इतने गलत तरीके से हो रहा है कि जिन्दगी से उसकी डोरी ही कट गई है। लेखक कहना चाहता है *'सा विद्या या विमुक्तये'* का आदर्श कब स्थापित होगा ?

— सं०

निन्दिया जागी ! निन्दिया लागी !!

मनुष्य क्रूर भी है, दयाशील भी है। मनुष्य कठोर भी है, मृदु भी है। मनुष्य में देव से दानव बनने की शक्ति है, तो दानव से वह देव भी बन सकता है। हृदय परिवर्तन हो जाने पर वह अपने को जैसा चाहे बना सकता है !

भरत-क्षेत्र के केकय देश के आधे भाग में श्वेताम्बिका नगरी थी। नगरी से बाहर उत्तर-पूर्व के कोण मे मृगवन उद्यान था—सुन्दर, सुरभित और सुखद। नगरी सुन्दर, और वहाँ के लोग समृद्ध थे।

राजा परदेशी वहाँ पर राज्य करता था। रानी का नाम सूर्यकान्ता, और राजकुमार सूर्यकान्त था। परदेशी राजा क्रूर, कठोर, निर्दय और भयकर था। धर्म क्या है ? यह कभी उसने जानने का प्रयत्न भी नही किया। प्रजाजन सदा उससे भयभीत रहते थे। पर-दुःख को वह अपना मनो-विनोद समझता था। "देह से भिन्न जीव नही है।" यह उसका दृष्टि-कोण बन गया था। अभी तक कोई ऐसा समर्थ पुरुष उसे नही मिला था, जो परदेशी राजा के दृष्टि-कोण को बदल सके। प्रजाजन परदेशी को साक्षात् यम और काल समझते थे।

कुणाल देश की राजधानी श्रावस्ती में राजा जितशत्रु राज्य करता था। वह परदेशी का अभिन्न मित्र था। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। कोई भी सुन्दर वस्तु देखते, तो एक-दूसरे को दिया-लिया करते थे—उपहार के रूप मे।

एक बार परदेशी ने अपने बुद्धिमान तथा विश्वस्त मन्त्री चित्त सारथि को श्रावस्ती भेजा—कुछ उपहार देने को तथा वहाँ की राजनीति का अध्ययन करने को। श्रावस्ती मे पहुँच कर चित्त सारथि ने जितशत्रु राजा को उपहार समर्पित किया और वहाँ रहकर राजनीति का अध्ययन करने लगा।

उस समय वहाँ भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा के समर्थ आचार्य केशी श्रमण पधारे थे। चित्त ने भी उनकी कल्याणी वाणी का लाभ लिया। चित्त, केशी श्रमण के प्रवचन सुनकर उनमें डूब गया। उसे रस आया! उसे अनुभव हुआ—मेरा खोया धन मुझे मिल गया। उसने बारह व्रत अंगीकार किए। लौटते समय चित्त ने केशी श्रमण से श्वेताम्बिका पधारने की प्रार्थना की। केशी श्रमण मौन रहे। चित्त ने दोबारा प्रार्थना की! तिबारा फिर प्रार्थना की!!

◎............

केशी श्रमण परदेशी की क्रूरता और अधर्मशीलता से भली-भाँति चिर-परिचित थे। उन्हें अपना भय नही था, वे स्वयं अभय थे। परन्तु अपने धर्म और संघ की वहाँ पर अवज्ञा न हो जाए, इसकी उनके मानस में गहरी चिन्ता थी। चित्त, चतुर था, वह मौन के रहस्य को समझता था।

चित्त सारथि विनम्र, पर सतेज स्वर में बोला : "भंते, आप किसी प्रकार का अन्यथा विचार न करे। श्वेताम्बिका अवश्य ही पधारें। वहाँ आपके पधारने पर बहुत बड़ा लाभ होगा—धर्म की महती सेवा होगी! प्रभावना होगी!"

केशी श्रमण विहार करते-करते श्वेताम्बिका पधार गए

और मृगवन में विराजित हुए। प्रजाजन हजारों की संख्या में आकर वाणी का अमृत-पान करने लगे। प्रवचन-शैली, मधुर और आकर्षक थी। प्रतिपादन पद्धति अद्भुत और अनुपम थी।

◎..........

एक दिन चित्त, अवसर देखकर राजा परदेशी को अश्व परीक्षा के बहाने मृगवन की ओर ले आया। शान्त और श्रान्त होकर चित्त और परदेशी मृगवन मे चले गए। वहाँ पर केशी श्रमण जनता को धर्म-देशना सुना रहे थे। राजा ने घृणा भरी दृष्टि से एक बार केशी श्रमण की ओर देखा। परन्तु केशी सामान्य सन्त नही थे। वे चार ज्ञान के धर्त्ता और देश-काल के ज्ञाता थे। उनके सयम और तप का प्रभाव अद्भुत था। चित्त की प्रेरणा से, मुनि के तेज से और अपनी जिज्ञासा से वह केशी श्रमण के चरणों में पहुँच गया। मुनि की धर्म-देशना का उसके मानस पर प्रभाव पड़ा। उसने केशी श्रमण से छ. प्रश्न किए थे। तर्क-पूर्ण समाधान पाकर वह प्रसन्न हो गया। उसके जीवन में आज यह चमत्कार था। उसकी चिर-संचित शंकाओं का आज मौलिक समाधान मिल चुका था।

परदेशी के जीवन की दिशा बदल गई। उसने वही पर बारह व्रत अगीकार कर लिए। वह श्रावक बन गया। वह अधर्म से धर्म की ओर, क्रूरता से कोमलता की ओर अपनी प्रगति और विकास करने लगा। वह अभय, अद्वेष और अखेद होकर धर्म की साधना करने लगा। प्रजाजन भी अब उसे श्रद्धा और भक्ति के नेत्रों से देखने लगे थे। परदेशी जितना क्रूर, कठोर और उग्र था, अब उससे भी अधिक दयालु, कोमल और नम्र बन गया था। केशी श्रमण का पधारना सफल हो गया। चित्त की चिर-संचित भावना भी पूरी हुई।

अपने पर अनुरक्ति की कमी, और विरक्ति की अधिकता देखकर सूर्यकान्ता रानी के मन में क्षोभ, रोष और प्रतिशोध की आग जलने लगी। अपने भोग-विलास मे विघ्न समझ कर वह उबल पड़ी। जब रानी को यह ज्ञात हुआ कि राजा ने अपने राज्य के चार विभाग कर दिए है, और अब वे निवृत्त होते जा रहे है, तब तो रोष की ज्वालाएँ फ़ूट पड़ी ! रानी ने भोजन में विष देकर राजा परदेशी को मारने का असफल प्रयत्न किया ओफ ...! स्वार्थान्ध व्यक्ति कितना क्रूर हो जाता है ?

◎............

परदेशी को विष-दान का पता लगा। वह पौषधशाला मे जाकर बैठ गया। जीवन की आलोचना करके संलेखना कर ली। उसके मन में सूर्यकान्ता के प्रति जरा भी द्वेष और रोष नही था। वह शान्त, प्रशान्त, उपशान्त था। समाधि-मरण से मरकर वह प्रथम देवलोक के सूर्याभ विमान में सूर्याभ देव बन गया। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र मे होकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा।

—राय पसेणिय/⊗

अध्यात्म जागरण का चमत्कार वस्तुत ऐसा ही होता है ! भोग से जिसका मन एक बार ऊब गया, वह फिर उसमे डूब नही सकता ! परदेशी अपनी प्रिया के प्रति भी समभाव रखता है; क्योकि वह महाश्रमण प्रभु केशी के जगाए जाग गया था और सूर्यकान्ता मोह-निद्रा के सुलाए सो गई थी !

— मु०

व्यक्ति और शक्ति !

पुरुष की शक्ति ?
हाँ पुरुष की शक्ति !
कोई नाप सका है
उस की शक्ति को ?
वह अजय है, अक्षय
है, त्रिकाल अबाधित है
उसकी लम्बी उड़ान ...!
चतुर्दिग मे फैली है
विशाल उसकी भुजाएँ
और प्रतिशोध की
लिए उर मे वह आग है।
अथ जीवित है वह अगार खाकर
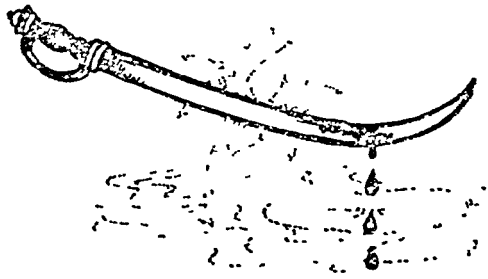
नही वह केन्द्रित है!
कहाँ ?
आद्या शक्ति नारी के
कोमल स्पर्श में
हाँ, है पर किसी के लिए
वही वरदान है और
किसी के लिए अभिशाप है वह!
इसलिए इतिहास के अध्याय में
झांक रहा यह सत्य है—
कृष्ण, कस, गांधी, गोडसे
बुद्ध, आनन्द, महावीर
जमाली और गोशालक,
सभी में थी अक्षय शक्ति!
पर अभिव्यक्ति में था अन्तर!!
यह अभिव्यक्ति का ही तो है अन्तर!
किसी की निन्दिया जागी—
काकी निन्दिया लागी!!

—मुक्त चिन्तक

संन्यासी का द्वन्द

संन्यासी का द्वन्द

संन्यास, पलायन ही हो यह बात नहीं है। इसे हम अकर्मण्य भी नही कह सकते, पर संन्यास सच्चा हो यह अनिवार्य और अन्तिम शर्त है। जो संन्यास मानस मन्थन के द्वन्द मे से आया है वह सच्चा संन्यास है। भारतीय संस्कृति के दो उज्ज्वल नक्षत्र हैं—बुद्ध और महावीर। इन दोनो महापुरुषो का अर्न्तद्वन्द विश्व-वेदना की वीणा के स्वर बन फूट पड़ा था। फलस्वरूप राग की मूल बिन्दु नारी का कोमल पर अत्यधिक कठोर मोह-पाश भी इन्हे न बांध सका। तृष्णा, कामना, वासना या भोगेषणा—इन सब से मुक्ति दिलाने की किसी भी बाहरी शक्ति मे संगठित शक्ति नही है। इनके प्रति जितना तीव्र द्वन्द पैदा होगा, मन उतनी ही तीव्रता से इन आकर्षणो से मुक्त होगा!

व्यक्ति के द्वन्द की धारा का बहाव, विपथ की ओर होगा तो धारा विनाश के अंतिम गर्त मे विलीन होगी और पथ की ओर हुआ तो उद्देश्य के क्षीर सागर मे जा मिलेगी। दोनो भावो का प्रतिनिधित्व जमाली के द्वन्द की प्रथम पथ की ओर बढने वाली धारा और फिर विपथ की ओर बढ़ने वाली धारा से स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है!!

संपादक

सुबह का भूला घर न लौटा !

मनुष्य का उत्थान और पतन उसके विचारों और भावनाओं पर निर्भर करता है। सत्य को समझना और समझ कर उसे जीवन में उतारना सुगम नहीं है। सत्य को पाकर भी बहुत-से सत्य पथ से भूल-भटक जाते हैं।

कुण्डलपुर नगर में महाश्रमण महावीर की बडी बहिन सुदर्शना रहती थी। जमाली उसका पुत्र था। वह कलाओं में, विद्याओं में तथा धर्म-नीतियों मे पारंगत विद्वान् था। व्यक्ति की योग्यता कभी छिपी नही रहती, जैसे पुष्प की सुगन्ध छिपी नही रहती। महावीर की पुत्री प्रियदर्शना के साथ जमाली का शुभ दिवस में विवाह हो गया। विवाह, नर और नारी का एक पवित्र संवन्ध है। जमाली और प्रियदर्शना में स्नेह था—वे सुखी थे।

◎ ... .

भगवान् महावीर एक बार कुण्डलपुर पधारे। जनता ने अमृतवाणी सुनी। जमाली तो इतना मुग्ध हो गया कि अपनी माता से अनुमति लेकर पाँच-सौ क्षत्रिय कुमारों के साथ प्रव्रजित होकर भगवान् का शिष्य वन गया। प्रियदर्शना के लिए भी इस ससार सूना था। पति का मार्ग, पत्नी का मार्ग है। इस [illegible] से प्रियदर्शना भी एक हजार सहचरियों के साथ भगवान की [illegible] वन गई। जमाली अपने शिष्य-परिवार के साथ और [illegible] अपने शिष्या-परिवार के साथ [illegible] [illegible] के [illegible] नगर-नगर में धर्म-जागरण का [illegible] [illegible] [illegible]

कालान्तर में जमाली अनगार विहार करते-करते श्रावस्ती नगरी पहुँचे । नगरी के बाहर तिन्दुक बाग में ठहर गए। मनुष्य का स्वास्थ्य उसके विचारों के साथ, उनके भोजन से भी प्रभावित होता है । रूखा-सूखा भोजन मिलने से उसके शरीर मे रोग पैदा हो गया । देह की शक्ति इतनी क्षीण हो चुकी थी कि वे खड़े और बैठे भी नही रह सकते थे । देह-बल के बिना अध्यात्म साधना भी रुक जाती है । अपने शिष्यों को जमाली ने आदेश दिया :

"मैं बैठने में अशक्त हूँ, लेटना चाहता हूँ, मेरी शय्या तैयार कर दो ।"

शिष्य गुरु के आदेश के पालन में जुट गए । अशक्ति मनुष्य को अधीर बना देती है । एक क्षण के बाद ही जमाली ने पूछा : "शय्या कर दी क्या ?"

शिष्यों ने कहा : "अभी नही, अभी तैयार की जा रही है ।"

जमाली शिष्यों के इस उत्तर से विचारों के गहरे सागर में उतरते गए । उनके मानस मे विचारों का तूफान उमड़ पड़ा—

भगवान् महावीर का कथन है : "जो कार्य प्रारम्भ हो चुका है, उसे किया ही समझना चाहिए । परन्तु यह तो प्रत्यक्ष मे ही लोक विरुद्ध है ।"

जमाली को अपनी सूझ पर गर्व हो आया । शिष्यो से कहा :

"भगवान् महावीर जो कहते है, वह ठीक नही है । मैं जो कहता हूँ, वह ठीक है । कार्य की समाप्ति—पूर्णता पर ही उसे 'कृत' किया हुआ कहा जा सकता है, आरम्भ करते ही 'कृत' कहा गया है ।"

स्वस्थ हो जाने पर वह खुलकर अपने विचारों का प्रचार करने लगा। प्रियदर्शना ने भी जमाली के पक्ष को सत्य मानकर भगवान् महावीर के शासन के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ कर दिया। पिता से पुत्री कितनी दूर भटक गई थी। जमाली के वहुत से शिष्य और प्रियदर्शना की बहुत-सी शिष्याएँ, उनका विरोधी विचार और प्रचार देखकर भगवान् के शासन मे चले गए थे।

◎............

एक बार प्रियदर्शना ढंक कुम्भकार के यहाँ पर ठहरी। ढंक भगवान् महावीर का परम-भक्त और श्रद्धाशील श्रावक था। प्रियदर्शना ने उसे जमाली के विचार में लाने का प्रयत्न करते हुए कहा :"देवानुप्रिय, भगवान् का मार्ग ठीक नही है, जमाली का कथन सत्य है।"

परन्तु ढंक कुम्भकार भगवान् के धर्म में इतना अनुरक्त था कि उसके गले प्रियदर्शना की बात नहीं उतरी। ढंक ने प्रियदर्शना को समझाने का एक सुन्दर उपाय सोचा। जिस समय प्रियदर्शना की शिष्याएँ स्वाध्याय मे निरत थी, उस समय ढक ने एक अंगारा उनकी शाटी पर रख दिया, पता लगते ही प्रियदर्शना ने भर्त्सना के स्वर में कहा : "आर्य यह क्या करते हो ? हमारी शाटी जल गई है।"

ढक ने विनम्र शव्दो में कहा :"पूज्या, आपके मत से आपकी बात ठीक नही है। शाटी का अभी एक पल्ला ही जला है, पूरी शाटी नही। फिर 'जल गई' यह वचन प्रयोग आपके मत के प्रतिकूल है।"

बुद्धिमान को सकेत पर्याप्त होता है। अपने मिथ्या विचारो की आलोचना करके प्रियदर्शना ने फिर भगवान् का शासन स्वीकार किया। प्रियदर्शना के चले जाने पर जमाली को

बहुत धक्का लगा। वह श्रावस्ती से चम्पा पहुँचा, भगवान् के समीप जाकर वह बोला : "देवानुप्रिय, जब मैं आपके पास से गया था, तब मैं छद्मस्थ था। अब सर्वज्ञ हूँ, केवली हूँ और जिन हूँ।"

गणधर गौतम ने जो भगवान् के पास ही बैठे थे, जमाली से प्रश्न कर दिया : "यदि आप सर्वज्ञ हैं, तो बताइए कि यह लोक शाश्वत है, या अशाश्वत है ? जीव शाश्वत है, या अशाश्वत है ?" जमाली प्रश्नकर्ता की ज्ञान-गरिमा के सामने हतप्रभ हो गए, कुछ उत्तर न दे सके।

भगवान् शान्त स्वर में बोले : "जमाली, तुम एक छोटे-से प्रश्न का भी समाधान नहीं दे सके; जब कि मेरा एक छोटे-से-छोटा शिष्य भी इसका उत्तर दे सकता है !"

जमाली निरुत्तर होकर वहाँ से लौट गए। बहुत वर्षों तक कठोर चारित्र का पालन किया। परन्तु जन-साधारण में अपने मिथ्या विचारों का प्रचार करने से श्रद्धा भ्रष्ट हो गई थी। अतः उनका अन्तिम जीवन सुधर नहीं सका।

—उत्तरा०, अ० ३, नि० गा० १६७/ ⊗

जीवन के प्रभात में पथ भूल जाने वाला तो जीवन की संध्या या मध्यान्ह वेला तक लौट कर प्रशस्त पथ पर चल भी पडता है; परन्तु जो जीवन के मध्यान्ह में पथ भूल जाता है वह जीवन की सन्ध्या तक, आखिरी सांस तक भी नहीं लौट कर आता—अपने पथ पर ! महावीर के पथ से भूले जमाली को सुबह के भूले की तरह घर लौट आना चाहिए था, पर वह नहीं लौटा। लेखक कहता है—जीवन के मध्यान्ह मे भूलने वाला अत्यधिक आग्रहशील होता है।

—सं०

उसकी नाव तिर रही थी !

सुन्दर भोर का सुनहला सूर्य पोलासपुर के राज-प्रासादों पर अपनी कोमल, केशरी किरणें बिखेर रहा था। खगों का मधुर कलरव महलों में मादकता भर रहा था। विजय राजा की रानी श्रीदेवी अपनी दुलार भरी बोली बोल रही थी :

"वत्स. अतिमुक्त ! उठो, जागो। सूर्य की गुलाबी आभा से पोलासपुर की कैसी सुषमा हो गई है ? लो उठो, देखो, देर मत करो—लाल मेरे।"

o ....

जीवन का माधुर्य कहाँ है ? जीवन का सौन्दर्य कहाँ है ? एक ही उत्तर है, एक ही समाधान है—शैशव में ! बचपन में !! कितना कोमल, कितना मृदु, और कितना मधुर है—यह शैशव काल ! न यहाँ छल है, न कपट है, न माया है, और न किसी प्रकार का दुराव-छुपाव ही है। सीधी-सरल भाषा में कोमल भावों की अभिव्यक्ति मानो, मुख कमल से सुरभित पराग झर रहा हो।

o....... .. .

अतिमुक्त राजकुमार है। सुरीली आवाज, मीठा कंठ—मानो कोयल कूक रही है। नगर के बच्चों में हिल-मिलकर खेल रहा है। मुख की गुलाबी आभा, सुन्दर वसन और चमकते-दमकते आभूषण शालीनता के प्रतीक हैं। परन्तु मन में न भेद है, न खेद है। वह खेल रहा है, क्योंकि खेल उसे प्यारा है। बच्चों को खेल मे अनन्त आनन्द आता है। न प्यास की परवाह, न

की चिन्ता। अतिमुक्त मतवाला होकर, अपनी मस्ती में झूम रहा है ! कूद रहा है !! खेल रहा है !!!

०........ ...

गणधर गौतम भिक्षा के लिए पोलासपुर में आए है। एक घर से निकले, दूसरे में प्रवेश किया, फिर तीसरे में। वच्चों के खेल के मैदान के पास होकर वे धीर, गम्भीर और मन्द गति से बढे चले जा रहे थे। शान्त, दान्त और मन्द मुस्कान से भरा मुख, विशाल भाल, उन्नत मस्तक, चमकते नेत्र, अभय की मंजुल मूर्ति ! अतिमुक्त इस भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बोला :

"भंते, आपका परिचय ?" अतिमुक्त ने आगे बढकर पूछा।

"मैं एक भिक्षु हूँ। यही मेरा परिचय है।" गौतम ने मुस्करा कर जवाब दिया।

"तो, आप घरों में क्यों घूमते है ?"

जिज्ञासा भरी दृष्टि से अतिमुक्त गणधर गौतम के मगलमय मुख की ओर अपलक देख रहा था।

"भिक्षा के लिए, वत्स !" गौतम ने कहा।

"अच्छा, भोजन के लिए ! पधारिए मेरे घर, मेरी माता आपको प्रभूत भोजन दे देगी।" अतिमुक्त के अन्तर जीवन में जो ज्योति जगमगा रही थी, उसी ने भाषा का रूप लेकर यह बात कही थी।

अतिमुक्त निर्भय था। अपने नन्हे-से हाथ से उसने गणधर गौतम की अंगुली पकड़ ली थी, और अपने साथ अपने घर ले आया। माता देखकर हैरान ! पिता देखकर आश्चर्य में !! पुत्र के चातुर्य पर माता अन्दर-ही-अन्दर विहँस रही थी। माता से अतिमुक्त ने कहा : 'माता, इन्हें भिक्षा दीजिए, खूब दीजिए। इतना भोजन दीजिए, कि दूसरे घर इन्हें जाना ही न पड़े।" गणधर

गौतम अतिमुक्त के सुन्दर संस्कारों से प्रसन्न थे। गौतम ने अपनी मर्यादा से भक्त-पान लिया और लौटने लगे। अतिमुक्त ने समीप होकर पूछा : "अब आप कहाँ जा रहे हैं!"

"नगर से बाहर श्रीवन में मेरे धर्म गुरु हैं। उनकी सेवा में जा रहा हूँ।" गौतम ने नेह भरे नयनों से देखते हुए कहा।

"अच्छा, आपके भी गुरु हैं ? तो चलिए मैं भी उनके दर्शन करूंगा।" अतिमुक्त परिचित की भाँति साथ में चल रहा था। गौतम ने जैसे वन्दन किया, वैसे ही अतिमुक्त ने भी प्रभु को सभक्ति वन्दन किया। जगमगाती इस बाल-जीवन ज्योति को भगवान् ने मधुर शब्दों में मधुर उपदेश दिया।

●...... .....

"भंते, मैं भी आप जैसा होना चाहता हूँ।" अतिमुक्त ने विश्वास के गम्भीर स्वर में कहा।

अतिमुक्त अपने घर लौटा। पिता से और माता से अपने हृदय की भावना स्पष्ट कह दी। माता हंसी, पिता मुस्कराया। दोनों ने समवेत स्वर में कहा :

"भिक्षु बनना हंसी-खेल नही है वत्स ! यह असिधारा पर चलना है। जलते अगारों पर बढना है। जीवन में ही मृत्यु का नाम है—भिक्षुत्व ! तुम अभी कुसुम-से कोमल हो।"

"मैंने अपने आपको तोल लिया है, नाप लिया है। अपनी शक्ति को परख लिया है। मैं अंगारों पर चल सकता हूँ। शूलों पर बढ सकता हूँ। मेरा सकल्प अटल है।" अतिमुक्त के दृढ स्वर से माता-पिता कपित हो गए। अपने पक्ष को सबल करते हुए अतिमुक्त बोल रहा था :

"जो जन्मा है, वह अवश्य ही मरेगा। पर कब और कैसे

जीवन का पर्दा गिरता है, यह मैं नहीं जानता।"

"जीव, कर्म के वश वर्ति हो संसार में परिभ्रमण करता है, यह मैं जान चुका हूँ और इस पर विश्वास भी कर चुका हूँ।"

◎.... ....

माता-पिता की प्रसन्नता के लिए, मनस्तोष के लिए, अतिमुक्त प्रथम राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ। पर अन्तर में लगन थी अतः वह भगवान् के पावन शासन में दीक्षित हो गया।

अब अतिमुक्त साधक बन गया था। संभल-सभल कर वह चलता था। विवेक को साथ रखता था। विचार में गहनता और वाणी में गम्भीरता आना सहज था। परन्तु बाल-सुलभ स्वभाव कभी-कभी दबाने पर भी उभर-उभर आता था।

◎ ....

आकाश, मेघाच्छन्न था। वर्षा होकर ही चुकी थी। स्थविरों के साथ अतिमुक्त श्रमण भी विहार भूमि को निकला। स्थविर इधर-उधर बिखर गए। अतिमुक्त ने देखा कल-कल निनाद करता वर्षा का जल तेज गति से बहा चला जा रहा है। बचपन के सस्कार उभर आए। मिट्टी से पाल बाँधकर जल के प्रवाह को रोका, और अपना पात्र उसमें छोड़ दिया। आनन्द विभोर होकर वह बोल उठा:

"तिर मेरी नैया तिर।" शीतल बयार चल रही थी, अतिमुक्त की नौका थिरक रही थी। प्रकृति हंस रही थी। परन्तु स्थविर यह कैसे सहन कर सकते थे? अन्तर का रोष उनके मुख पर स्पष्ट प्रतिभासित हो रहा था। अतिमुक्त अपने जीवन में आज प्रथम बार डरा था, कंपा था, भयभीत हुआ था। "अभय

आत्मा निर्मल है, वह पूज्य है, आदरणीय है। साधना की भूमि पर देह की पूजा नहीं, गुणों की पूजा की जाती है।"

⊚............

लघु साधक अतिमुक्त अब एकाग्र और एकनिष्ठ होकर स्थविरों के पास विनय और भक्ति से ग्यारह अगों का अध्ययन करने लगा। संयम और तप की कठोर साधना से उसका कमल-सा कोमल देह कुम्हला गया। गुलाबी आभा तेज और ओज में परिणत हो गई थी। गुण संवत्सर की लम्बी साधना से देह क्षीण होने लगा था। फिर भी वह लघु पर महान् साधक मेघ, तपोमार्ग पर बढ़ता ही रहा। अन्त में विपुलगिरि पर संलेखना करके अजर, अमर और शाश्वत हो गया! अतिमुक्त का जीवन एक मधुर काव्य बन गया है!!

— अन्तकृ०, वर्ग ६, अ० १५/⊗

कथाकार कहना चाहता है कि बड़े-बड़े ज्ञानी, क्रियाकाण्ड लेकर साधना पथ पर चलते है, परन्तु विमल जीवन, अति-मुक्त जैसी आत्माओ में ही साकार हो सकता है। सरल, शुद्ध आत्माओ के लिए विधि-निषेध के अम्बरों की आवश्यकता नही है। अपने विधि-निषेध वे तत्काल मनोमंथन द्वारा बना लेते है। अतिमुक्ति के भोले बचपन में सरल आत्मा झाँक रही थी। विधि-निषेध की ऊपरी कल्पना से उसकी आत्मा बहुत दूर थी।

— सं०

क्षमापना का आदर्श !

गणधर गौतम और श्रावक आनन्द दोनों भगवान् के संघ की शोभा थे । दोनों की जीवन-भूमि पर धर्म साकार होकर उतरा था। एक में श्रमण-धर्म का चरम विकास था, दूसरे में श्रावक-धर्म का अनुपम निवास। दोनों ही भगवान् की कृपा के पात्र थे, प्रियतर थे । गुरु को योग्य शिष्य के जीवन पर पूर्ण विश्वास और सन्तोष था। सन्देह एवं अविश्वास की एक भी काली रेखा नही थी !

बाणिज्यग्राम नगर के बाहर पौसधशाला में धर्म साधना करते-करते आनन्द को अवधि-ज्ञान प्रकट हो गया। गम्भीर और गहरा व्यक्ति सम्पत्ति पाकर बाहर छलकता नही। पूर्ण कुम्भ कभी छलकता नही और अधूरा कभी बोले बिना रह ही नहीं सकता! आनन्द ने अपनी इस ऋद्धि का, अपनी इस सिद्धि का किसी के सामने बखान नही किया । योग्य व्यक्ति का सयोग मिलने पर अपनी ऋद्धि-सिद्धि को पकट करने मे कोई दोष भी नही होता; वल्कि प्रकट करने मे कभी-कभी लाभ भी हो जाता है।

इन्द्रभूति गणधर गौतम बेला-बेला पारणा करते थे। ज्ञान के साथ तप का योग जुड़ जाने पर जीवन तेजोमय हो जाता है। विना तप का ज्ञान फीका-फीका सा रहता है । उसमें जीवन ज्योति नही जगती।

पारणे का दिन था। भगवान् की आज्ञा से गणधर गौतम

स्वय गोचरी को चल पडे । स्वावलम्बन भिक्षु जीवन में आवश्यक है । वाणिज्यग्राम नगर के घर-घर में पावन चरण पड़ने लगे । जिधर भी डग बढ़ जाते, जिधर भी दृष्टि पड़ जाती, दाता बाग-बाग होकर निहाल हो जाता । भिक्षु का पात्र मंगलमय होता है, किसी भाग्यशाली के घर ही वह पहुँचता है। भिक्षा लेकर इन्द्रभूति गौतम प्रभु की सेवा में वापिस लौट रहे थे। धीर, गम्भीर और मन्थर गति के साथ ।

जन-जन के मुख से जब गौतम ने, श्रावक-आनन्द की तपस्या, साधना और आराधना का श्रद्धामय यशोगान सुना—तो आनन्द से मिलने की अपने मानस-कोष मे चिर संचित भावना का वे विरोध नही कर सके । आनन्द के पास गौतम स्वयं जा पहुँचे ।

गणधर गौतम को आया जानकर आनन्द के मन मे अपार हर्ष लहराने लगा । शरीर तपस्या से कृश और अशक्त हो चुका था । स्वागत-सत्कार के लिए उठने की प्रबल भावना होने पर भी वह उठ नही सका । क्षीण स्वर में बोला : "भते,उठने की भावना होते हुए भी उठ नही सकता । मेरा सविनय सभक्ति वन्दन स्वीकार करे ।"

गौतम ने वन्दन स्वीकार किया ।

आनन्द ने पूछा —"भते ! गृहस्थ को अवधि ज्ञान हो सकता है ?"

"हाँ, अवश्य हो सकता है" गणधर गौतम ने कहा ।

"तो, भंते, आपकी कृपा से वह मुझे मिला है । पूर्व मे, पश्चिम में और दक्षिण में लवण समुद्र में पाँच-पाँच-सौ योजन तक; उत्तर में चुल्ल हिमवान् पर्वत तक, ऊपर सौधर्म विमान तक और

नीचे रत्नप्रभा के लोलुयच्च्युत नरकवास तक जान सकता हूँ, देख सकता हूँ।" आनन्द ने अपनी बात कही।

गणधर गौतम ने शान्त स्वर में कहा : "आनन्द! श्रावक या गृहस्थ को अवधि ज्ञान हो तो सकता है, पर इतना लम्बा नही, इतने विस्तार वाला नहीं। आनन्द, तुम अपने इस आलोच्य कथन की आलोचना करके जीवन की शुद्धि करो।"

आनन्द ने विनीत भाव से कहा : "भन्ते, क्या सत्य की भी शुद्धि की जाती है?"

"हाँ, की जाती है।" गौतम ने कहा।

"तो, भन्ते, आप भी अपनी शुद्धि करने की कृपा करें।" नम्र स्वर मे आनन्द से कहा।

गणधर गौतम मौन भाव से वहाँ से चल पड़े। प्रभु के चरणों में उपस्थित होते ही अपने मन में रही शंका की गाँठ खोलकर रख दी और विनय युक्त स्वर में बोले :

"भन्ते, मैं भूल की राह पर हूँ, या आनन्द ?"

भगवान् ने स्पष्ट रूप में कहा : "गौतम भूल की राह पर तुम हो, आनन्द नही! आनन्द का कथन सत्य है। उसमें शंका के लिए जरा भी स्थान नही है।"

साधक सत्य को पाकर क्रुद्ध नहीं हर्षित होता है। गणधर गौतम तत्क्षण ही आनन्द के पास आए और क्षमापना की। गणधर गौतम और श्रावक आनन्द दोनों सरलता और नम्रता के मधुर क्षणों में रहकर एक-दूसरे से क्षमायाचा कर रहे थे।

१४ हजार श्रमणों के अधिनायक गणधर गौतम में कितना

महान् विनम्र भाव था! गौतम के प्रबुद्ध मन में सत्य का कितना आदर था! कितनी सरलता थी!! कितनी नम्रता थी!!! साधक अपनी भूल को मान-अपमान के गज से नहीं नापता है।

गौतम के मन में सन्देह था, पर महावीर की वाणी ने उसका समाधान कर दिया, पिपासु की प्यास बुझ गई। इस तरह गणधर गौतम और श्रावक आनन्द के जीवन का यह पावन प्रसग आज के अभिमानी युग के लिए एक सुन्दर सन्देश है।

⊗ ⊗

साधक की साधना मे सरलता और नम्रता की जितनी आवश्यकता है, उतनी अन्य किसी वस्तु की नही। अन्य वस्तु न हो, तब भी साधना मे बाधा न आएगी; परन्तु सरलता और नम्रता नही है, तो उसके पास कुछ भी नही है। केवल जवाहरात की दुकान का साइन बोर्ड लगाने से क्या होता है? साधक मे सरलता, नम्रता और सत्य के प्रति ममता न हुई तो आध्यात्मिक सुखोपलब्धि उससे कोसो दूर है।

— स०

काम विजेता स्थूल भद्र !

पाटली पुत्र में नन्द राजा राज्य करता था। शकटाल उसका मन्त्री था। मन्त्री के स्थूल भद्र और श्रियक दो पुत्र थे तथा सेणा, वेणा एव रेणा आदि प्रभृति सात पुत्रियाँ भी थी। उनकी स्मरण शक्ति अजब-गजब की थी !

पाटलीपुत्र मे वररुचि एक ब्राह्मण था, विद्वान और चतुर भी वह राजा से बहुत धन लेता था। प्रजा के धन का दुरुपयोग देखकर शकटाल को बड़ा क्लेश होता था। उसने वररुचि को धन देना बन्द कर दिया था। वररुचि ने वैर की गांठ बांधली थी। अत: शटकाल को सकट में डालने में वररुचि सफल हो गया। परन्तु श्रियक के हाथ से मरकर शकट ने अपने वंश के विनाश को रोक दिया। नन्द ने श्रियक को मन्त्री बनने को कहा। पर वह माना नही। बोला :"स्थूल भद्र मेरा बड़ा भाई है, उसे मन्त्री बना ले।"

स्थूलभद्र कोशा वेश्या के राग में मतवाला और मस्त था। परन्तु पिता की मृत्यु की सूचना से वह प्रबुद्ध हो गया। वैराग्य से भावित होकर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।

© ....

स्थूलभद्र मुनि दीक्षा लेकर ज्ञान-ध्यान में रत रहने लगे। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए स्थूलभद्र अपने गुरु के साथ पाटलिपुत्र पधारे। चातुर्मास का समय नजदीक आ जाने से गुरु ने वही पर चतुर्मास कर दिया। तव गुरु के समक्ष आकर चार मुनियों ने अलग-अलग चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी। एक मुनि ने सिंह की गुफा में, दूसरे ने सर्प के बिल पर, तीसरे ने कुए की

मेढ़ पर और स्थूलभद्र मुनि ने कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी।

गुरु ने उन चारों मुनियों को आज्ञा दे दी। सब अपने-अपने इष्ट स्थान पर चले गये। जब स्थूलभद्र मुनि कोशा वेश्या के घर गये तो वह बहुत हर्षित हुई। वह सोचने लगी:

"बहुत समय का बिछुड़ा मेरा प्रेमी वापिस मेरे घर आ गया।"

मुनि ने वहाँ ठहरने के लिए वेश्या की आज्ञा मांगी। उसने मुनि को अपनी चित्रशाला में ठहरने की आज्ञा दे दी। इसके पश्चात शृंगार आदि करके वह बहुत हाव-भाव दिखाकर, मुनि को चलित करने की कोशिश करने लगी, किन्तु स्थूलभद्र अब पहले वाले स्थूलभद्र न थे। भोगों को किपाकफल के समान दुखदाई समझ कर वे उन्हें ठुकरा चुके थे। उनके रग-रग में वैराग्य घर कर चुका था। इसलिये काया से चलित होना तो दूर; वे मन से भी चलित नहीं हुए। मुनि की निर्विकार मुख मुद्रा को देखकर वेश्या शान्त हो गई। मुनि का धर्मोपदेश वैश्या के हृदय को छू गया और वह जाग गई। उसने भी भोगों को दुःख की खान समझ कर उनको सर्वथा के लिए त्याग दिया और वह श्राविका बन गई।

o ... .

चातुर्मास समाप्त होने पर सिंहगुफा, सर्पद्वार और कुए की मेढ़ पर चातुर्मास करने वाले मुनियों ने आकर गुरु को वन्दन किया गुरु ने "कृत दुष्कराः" कहा, अर्थात् "हे मुनियों! तुमने दुष्कर कार्य किया है, मेरी आत्मा तुमसे प्रसन्न है।"

जब स्थूलभद्र मुनि आये तो गुरु महाराज एक दम खड़े हो गये, उनकी मुनि की ओर हाथ बढ़ाकर "कृत दुष्कर-दुष्कर." कहा; अर्थात् "हे मुने! तुमने महान् दुष्कर-दुष्कर कार्य किया है, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ।"

गुरु की बात सुनकर उन तीनों मुनियों को ईर्ष्याभाव उत्पन्न हुआ। जब दूसरा चातुर्मास आया तब सिंह की गुफा में चातुर्मास करने वाले मुनि ने कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करने की आज्ञा माँगी। गुरु ने आज्ञा नही दी, फिर भी वह वहाँ चातुर्मास करने के लिये चला गया। वेश्या के रूप लावण्य को देखकर उसका चित्त चलित हो गया। वेश्या धर्मशीला बन गई थी। परन्तु मुनि ने वेश्या से भोग की कामना व्यक्त की।

वेश्या ने कहा :"मुझे लाख मोहरे दो, तब... !"

"मुनि ने कहा :"हम तो भिक्षुक है। हमारे पास धन कहाँ ?"

वेश्या ने कहा :" नैपाल का राजा हर-एक साधु को एक रत्न-कम्वल देता है। उसका मूल्य एक लाख मोहर है। इसलिये तुम वहाँ जाओ और एक रत्न-कम्बल लाकर मुझे दो।"

वेश्या की बात सुनकर वह मुनि नैपाल गया। वहाँ के राजा से रत्न-कम्बल लेकर वापिस लौटा। मुनि को जगल में कुछ चोर मिले। उन्होंने उसका रत्न-कम्वल छीन लिया वह वहुत निराश हुआ। अन्तत वह पुनः नैपाल गया। अपनी सारी आप-बीती कहकर उसने राजा से दूसरे कम्वल की याचना की। अब की वार उसने रत्न-कम्बल को वास की लकड़ी मे डाल कर छिपा लिया। जगल मे उसे फिर चोर मिले। उसने कहा · "मैं तो भिक्षुक हूं। मेरे पास कुछ नही है।"

उसके ऐसा कहने से चोर चले गये। मार्ग में भूख-प्यास के अनेकों कष्टों को सहन करते हुए उस मुनि ने वडी सावधानी के साथ रत्न-कम्वल उस वेश्या को लाकर दिया। रत्न-कम्बल को लेकर वेश्या ने उसे उसी समय अशुचि में फेंक दिया जिससे वह

खराब हो गया। यह देखकर मुनि ने कहा : "तुमने यह क्या किया, इसको यहाँ लाने में मुझे कितने कष्ट उठाने पड़े हैं मालूम है?"

वेश्या ने कहा : "मुने! मैंने यह सब कार्य तुम्हें समझाने के लिये किया है। जिस प्रकार अशुचि में पड़ने से यह रत्न-कम्बल खराब हो गया है, इसी प्रकार कामभोग रूपी कीचड़ में फंसकर तुम्हारी आत्मा भी मलिन हो जायगी, पतित हो जायगी। हे मुने, जरा विचार करो! इन विषय-भोगों को किंपाकफल के समान दुःखदायी समझकर तुमने इनको ठुकरा दिया था। अब वमन किये हुए कामभोगों को तुम फिर से स्वीकार करना चाहते हो। वमन किये हुए की बांछा तो कौए और कुत्ते करते हैं। मुने! जरा समझो और अपनी आत्मा को सम्भालो।"

वेश्या के मार्मिक उपदेशों को सुनकर मुनि की गिरती हुई आत्मा पुनः संयम में स्थिर हो गई। उन्होंने उसी समय अपने पाप कार्य के लिए—"मिच्छामि दुक्कडं" दिया और कहा :

स्थूल भद्रः स्थूलभद्रः स एको खिलसाधुषु।

युक्तं दुष्कर दुष्करकार को गुरुणा जगे।

अर्थात्--सब साधुओं में एक स्थूलभद्र मुनि ही महान्, दुष्कर क्रिया के करने वाले है। जिस वेश्या के यहाँ बारह वर्ष पहले रहे उसी की चित्रशाला में चातुर्मास किया। उसने बहुत हाव-भाव पूर्वक भोगों के लिये मुनि से प्रार्थना की किन्तु वे किंचित मात्र भी चलित न हुए। ऐसे मुनि के लिए गुरु महाराज ने 'दुष्कर दुष्कर' शब्द का प्रयोग किया था, वह युक्त था! उचित था!!"

— नन्दी गा० ७६/

नारी मे पुरुष की आसक्ति हो जाना कोई अनहोनी बात नही है। पुरुष सन्यासी तो क्या, कोमल स्पर्श सुख की ओर उसकी प्रवृत्ति सहज है। पर धन्य वे आत्मा है जो पतन के मुख में पहुंच कर भी पुनः अपने साधना पथ पर स्थिर हो जाती हैं। गिर पडना कोई बुराई नही, पर गिर कर फिर अपने आप को भूल जाना बुराई है। गिर कर फिर उसी ताजगी से उठकर चल पड़ना अपने पथ पर—यह है पुरुष का वास्ताविक पुरुषत्व !

—सं०

अर्जुन की क्षमा-साधना !

मगध देश की राजधानी के बाहर सुन्दर फूलों का एक बाग था, जिसमें सुरभित और रंग-बिरंगे फूल हुआ करते थे। अर्जुन मालाकार का यह बगीचा था। उसकी आजीविका का यही एक साधन था। बन्धुमती उसकी पत्नी थी। वह सुन्दर और रूपवती थी। उसके अंग-अंग से यौवन फूट रहा था। पुलकित यौवन युक्त रूपवती को पाकर अर्जुन परम प्रमुदित था।

बाग के मध्य भाग में यक्ष का एक देवालय था। अर्जुन मालाकार के पूर्वज इसकी आराधना करते चले आ रहे थे। अर्जुन और बन्धुमती भी यक्ष की पूजा करते थे। अर्जुन अभी बाग में फूल चुन रहा था और बन्धुमती यक्षायतन में पूजा करने को आई।

राजगृही मे ललिता नाम की एक गोष्ठी थी, जिसमें स्वच्छन्द, आवारा, क्रूर और व्यभिचारी लोग मिले हुए थे। उस गोष्ठी के छह पुरुष आज इधर आ निकले। उन्होंने बन्धुमती को यक्षायतन में प्रवेश करते देखा। मन की प्रसुप्त वासना जाग उठी। अर्जुन को लोह शृंखला से बांधकर वे छह पुरुष बन्धुमती के साथ अनार्य कर्म करने लगे।

पुरुष चाहे कितना हो बलहीन एवं अशक्त क्यों न हो वह अपने सामने ही अपनी पत्नी का अपमान नही सह सकता। पुरुष मे पुरुषत्व नही, यह उस पर वज्र प्रहार की सी चोट होती है। नारी में सौन्दर्य नहीं, यह उसके स्वाभिमान पर

खुला आक्रमण ! उन छः व्यक्तियों का कर्म अर्जुन के पुरुषत्व को चुनौती थी !

यज्ञायतन में अपनी और अपनी पत्नी की यह दुर्दशा देखकर अर्जुन का मन ग्लानि से भर गया। वह यक्ष की भर्त्सना करते हुए कहने लगा :

"क्या तेरी भक्ति का यही फल है ! क्या हम तेरी पूजा इसीलिए करते है ?"

अर्जुन के इस उपालम्भ से यक्ष ने उसके शरीर में प्रवेश किया। अर्जुन के समस्त बन्धन टूट गए और उसने अपने हाथ में लोह मुद्गर लेकर छहों पुरुषों को और अपनी पत्नी बन्धुमती को मार डाला। लगातार ५ महीने और १३ दिनों तक अर्जुन का यही क्रम रहा। इस बीच उसने ११४१ मनुष्यों का घात किया। वह अपने आप में बेभान था और हिंसा करना उसका नित्य कर्म बन गया था।

○ ....

राजा श्रेणिक के आदेश से नगरी के द्वार बन्द हो गए। आघोषणा कर दी गई, कि—"जिसे अपना जीवन प्रिय हो, वह नगरी के बाहर न निकले !"

भगवान् महावीर के पधारने की सूचना राजा को और नगर की जनता को भी लगी। परन्तु किसी का साहस नहीं हो सका। जीवन का मोह सबको अवरुद्ध किए हुए था।

मेघ की गर्जना होने पर मयूर नांचता है, तो कमल की सुरभि पर भ्रमर गुञ्जार करता है, तब भगवान् के आने पर भक्त, घर की दीवारों में कैसे बन्द रह सकता है ! माता-पिता आदि सभी के समझाने पर भी सुदर्शन प्रभु के दर्शन-वन्दन को

चल ही पड़ा। जीवन की अपेक्षा सुदर्शन को प्रभु के दर्शन अधिक प्रिय थे। अर्जुन का उसे जरा भी भय नहीं था।

अभय होकर सुदर्शन धीर, मन्द गति से बढ़ रहा था। सहसा काल बनकर अर्जुन सामने आ पहुँचा था ! सुदर्शन ने मन में प्रतिज्ञा की :

"यदि इस संकट से बच गया, तो प्रभु के दर्शन करूँगा नहो बच सका, तो सागारी संथारा है !"

अर्जुन क्रोध में भर कर आया था। परन्तु सुदर्शन के सामने वह निस्तेज हो गया। शरीर से यक्ष के निकल जाने पर वह निःसत्व होकर धरणीतल पर गिर पड़ा। भौतिक बल पर अध्यात्म बल की यह महान् विजय थी ! क्रूर और बलवान् अर्जुन सुदर्शन के सामने दीन और निर्बल बनकर पड़ा हुआ था।

अर्जुन ने सुदर्शन की ओर शान्त नेत्रों से देखते हुए कहा :

"देवानुप्रिय, तुम कौन हो ! कहाँ पर जाना चाहते हो ?'

"मेरा नाम सुदर्शन है। भगवान् महावीर का मैं भक्त हूँ। प्रभु के दर्शन को जा रहा हूँ !" सुदर्शन ने मधुर स्वर में कहा था तभी !

"तो, क्या मैं वहाँ नहीं चल सकता ! क्या मुझे दर्शन का अधिकार नहीं है ?" अर्जुन ने आशा भरी आँखों से सुदर्शन की ओर देखा।

"क्यों नहीं, अवश्य चल सकते हो ! वहाँ पर किसी का प्रवेश निषिद्ध नही है। अपावन भी वहाँ पावन हो जाता है।" अर्जुन का मन वल्लियों उछल पड़ा, वह कहने लगा :

"अच्छा, बहुत अच्छा ! मैं अपावन हूँ, अब पावन बनने का

संकल्प है, मेरा।" अर्जुन सुदर्शन के साथ चल पड़ा।

भगवान् ने अर्जुन से कहा :"अर्जुन, सावधान हो जा! मनुष्य जन्म को सफल कर ले! अतीत तो बीत चुका है अब भविष्य तेरे हाथ में है! धर्म में वह शक्ति है, जिससे कल का अपावन आज पावन बन सकता है। विश्वास बदलते ही विश्व बदल जाता है, वत्स!"

⊙... ......

अर्जुन मालाकार भगवान् का शिष्य हो गया। आगार से अणगार बन गया। वह जीवन का नया मोड़ लेकर नयी दिशा में बढने लगा।

भक्त-पान के लिए अर्जुन भिक्षु, नगर में जाता। पर वहाँ उसे मिलते—पत्थर, डडों की मार, चांटों की चोट और अपशब्द के तीखे वाण—जो सीधे मन से टकराते! परन्तु अर्जुन मुनि, शान्त दान्त और धीर था। मन में सोचता :

"यह सब तो मेरा अपना किया कर्म है। मेरी क्रूरता से ये सभी पीड़ित थे। मैंने कितनी हिसा की थी!" अपने अतीत को याद करके अर्जुन मुनि का मानस ग्लानि से भर-भर जाता था।

छह मास तक लगातार लोगों के ताडन, तर्जन को अर्जुन ने शान्त भाव से सहन किया। पन्द्रह दिनों की सलेखना करके संयम और तप से आत्मा को भावित किया और अन्त में वह अपावन से पावन बन गया। सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गया।

—अन्त कृ० वर्ग ६, अ० ३/⊗

हृदय परिर्वतन वास्तव मे क्या हो सकता है, यह अर्जुन माली का भिक्षु जीवन बताता है। हृदय मे परिर्वतन आगया तो

फिर दूसरों के द्वारा मारना, पीटना, व्यंग और उपालम्भों के माध्यम से क्लेष पहुंचाता है—ये सब बातें उसके सामने तुच्छ हो जाती है। अर्जुन, अपने कृत-कर्मो से मुक्त होने के लिए जनता की भर्त्सना को मधुर व अपने जीवन के लिए कल्याणी वाणी मान कर सुनता था और इसीलिए वह भिक्षा को भी जाता था। आध्यात्मिक भाषा मे प्रति दिन उसके कर्म बिखरते रहे थे आत्मा निखरती रही थी।

— सं०

ज्योतिर्धर जीवन

मानव जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है। त्याग से जीवन में शान्ति, सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है, जब कि भोगमय जीवन सदा ही अशान्त एवं सतृष्ण रहता है। कुशील एवं हारे मन का मनुष्य साधना में सफल नही होता।

द्वारिका नगरी सौराष्ट्र देश की राजधानी थी। उसके समीप रैवतक पर्वत था। उसके पास ही नन्दन बाग था, जिसमें एक सुर प्रिय यक्षायतन था। द्वारिका, कृष्ण महाराज की राजधानी थी। द्वारिका में ही एक भद्रा सार्थवाही रहती थी। उसका एक पुत्र था— थावच्चा। थावच्चा भोगों में निमग्न था।

एक वार अरिष्ट नेमि भगवान् वहाँ पधारे। सुर प्रिय यक्षायतन में विराजित हुए। कृष्ण-देशना सुनने को आए और नगर के प्रजा जन भी। थावच्चा पुत्र ने भगवान् की वाणी सुनकर, माता की आज्ञा लेकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। थेवरों के पास ११ अग और १४ पूर्वो का अध्ययन किया।

थावच्चा पुत्र अपने शिष्यों सहित विहार करते-करते सेलकपुर नगर में पहुँचे। वहाँ पर मुभूमि भाग उद्यान मे विराजित हुए। राजा सेलक, रानी पद्मावती, युवराज मण्डूक और पन्थक प्रभृति ५०० मन्त्री तथा नगर के लोग दर्शन करने एवं धर्म-प्रवचन सुनने को आए। राजा सेलक ने श्रावक व्रत अंगीकार किए। कालान्तर मे महामुनि थावच्चा पुत्र भी वहाँ से विहार कर गए।

उसी युग में एक परिव्राजक था, जिसका नाम शुक था। वह वेद विद्या में पारगत था और सांख्य दर्शन का मर्मज्ञ ! एक बार परिव्राजक शुक, घूमता-घूमता सौगन्धिका नगरी में आया, वहाँ एक विख्यात सेठ था—सुदर्शन। श्रेष्ठी सुदर्शन ने परिव्राजक शुक से दस धर्म मूलक, पांच यम, पांच नियम और दान-धर्म आदि का उपदेश सुना और उसके मत को स्वीकार कर लिया। नगर के दूसरे प्रजा जनों ने भी परिव्राजक के धर्म को स्वीकार किया था।

◎.........

कालान्तर में विहार करते-करते अरणगार थावच्चा पुत्र भी वहाँ पधारे और नीलाशोक बाग में विराजित हुए। नगर के लोगों ने उपदेश सुना। श्रेष्ठी सुदर्शन भी अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसने थावच्चा पुत्र से श्रावक व्रत अंगीकार कर लिए।

परिव्राजक शुक को यह ज्ञात हुआ, तो वह सुदर्शन के पास गया। परन्तु सुदर्शन ने उसके प्रति विशेष भक्ति प्रदर्शित नहीं की। अपने हजार तापसों को साथ लेकर वह थावच्चा पुत्र अरणगार के पास नीलाशोक बाग में गया विचार चर्चा की। अन्त में वह भी थावच्चा पुत्र का शिष्य हो गया। श्रेष्ठी सुदर्शन को यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। थावच्चा ने अपने शासन का भार शुक पर छोड़ दिया और स्वयं पुण्डरीक पर्वत पर चले गए। शेष जीवन वहीं पर व्यतीत किया और अन्त में सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

◎............

अरणगार शुक, विहार करते-करते सेलकपुर पधारे। वहाँ सुभूमि भाग उद्यान में विराजित हुए। सेलकपुर के राजा ने अपने राज्य का भार अपने पुत्र मण्डूक को दिया और स्वयं अपने ५००

मन्त्रियों के साथ प्रव्रजित हो गया। गुरु के पास अध्ययन और तपस्या करके सेलक अणगार भी विहार करते-करते एक बार सेलकपुर में पधारे। मण्डूक ने खूब भक्ति की और रुग्ण दशा देखकर योग्य वैद्यों से चिकित्सा कराई। सेलक अपने श्रमणत्व भाव को भूल गया और सुख-सुविधा में मस्त हो गया। दूसरे सभी शिष्य अपने सेलक गुरु को छोड़ गए। सेवा में केवल एक पन्थक ही रह गया। सम्पूर्ण वर्षावास बीत गया। कार्तिक की पूर्णिमा थी। पन्थक ने प्रतिक्रमण किया और अन्त में गुरु से भी क्षमा-याचना की। सेलक का प्रसुप्त मन सजग हो गया। वह कुशील से फिर सुशील हो गया। अन्त में पुण्डरीक पर्वत पर अपना शेष जीवन व्यतीत किया, और थावच्चा की तरह सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

ज्ञाता अ० ५/⊗

भोगो से अभिज्ञ, भोग के प्रसंग उपस्थित होने पर सहसा उसमे नही डूब सकता। वह उधर आकर्षित भी होगा तो पानी की गहराई नापते हुए पानी मे उतरने वाले की तरह ! धीरे-धीरे शुभाशुभ का विकल्प लेकर उतरेगा !! संभव है शुभाशुभ की विचार प्रणाली मे अशुभ संकल्प टल ही जाए ? सेलक ने संयमी जीवन स्वीकार कर लिया था ! कुछ समय भोगों से दूर रहा, पर जब समय आया तो संयम का ध्यान भी नही रहा। जिसे भोगो के प्रति तीव्र घृणा उत्पन्न हो जाती है वह फिर इस तरह पिसल नही जाता।

— सं०

अपने बल पर अपना निर्माण !

एक बार श्रमण महावीर कुम्मार ग्राम से कुछ दूर सन्ध्या वेला में ध्यानस्थ खड़े थे। एक गोपाल आया और ध्यानस्थ महावीर से बोला : "रे श्रमण ! जरा देखते रहना मेरे बैल यहाँ चर रहे हैं, मैं अभी लौटकर आया।" दीर्घ तपस्वी महावीर अपनी समाधी मे थे।

....

गोपाल लौटकर आया तो देखा वहाँ बैल नहीं है, परन्तु श्रमण ध्यानावस्थि है। पूछा : "मेरे बैल कहाँ है ?" इधर-उधर देखा भी बहुत। पर बैलों का कुछ भी अता-पता नही लगा। वे अपने सहज स्वभाव से चरते-चरते कहीं दूर निकल गये थे।

श्रमण महावीर का कुछ भी उत्तर न पाकर वह कोप में भर कर बोला . "धूर्त ! तू श्रमण नही है, चोर है !"

....

गोपाल रस्सी से श्रमण महावीर को मारने के लिये उद्यत होता है, उधर देवराज इन्द्र स्वर्ग से यह सोच कर आते है—"कही यह अज्ञानी श्रमण महावीर को सताने न लगे।"

यह सोच कर इन्द्र ने ललकार कर गोपाल से कहा : "साव-धान ! तू जिसे चोर समझता है, वे राजा सिद्धार्थ के वर्चस्वी राज कुमार वर्धमान है। आत्म-साधना के लिये इन्होंने कठोर श्रमणत्व को धारण किया है। दीर्घ तप और कठोर साधना करने के कारण ये महावीर है !!"

गोपाल अपने अज्ञान मूलक अपराध की क्षमा माँग कर चला गया। पर इन्द्र ने श्रमण महावीर से कहा : "भंते ! आपका साधना काल लम्बा है। इस प्रकार के उपसर्ग, परीषह और संकट, आगे और भी आ सकते है। अतः आपकी परम पवित्र सेवा मे ही सतत रहने की कामना करता हूँ। मैं उपसर्गो से आपकी सुरक्षा करूँगा।"

गोपाल का विरोध और इन्द्र का अनुरोध महावीर ने सुना तो अवश्य, पर अभी तक वे अपने समाधि भाव में स्थिर थे। समाधि खोल कर बोले :

"इन्द्र ! आज तक के आत्म साधकों के जीवन के इतिहास में न कभी यह हुआ, न कभी यह होगा और न कभी यह हो सकता है—उपसर्गो से कौन बचा सकता है ? मुक्ति या, मोक्ष अथवा केवल-ज्ञान क्या, दूसरे के बल पर, दूसरे के श्रम पर और दूसरे की सहायता पर कभी प्राप्त किया जा सकता है ?

"आत्म-साधक, अपने वल पर, अपने श्रम और अपनी शक्ति-पर ही जीवित रहा है और रहेगा। वह अपनी मस्त जिन्दगी का बादशाह होता है, भिखारी नही ! वह स्वय अपना रक्षक है, वह किसी का संरक्षितहोकर नही रह सकता। साधक का कैवल्य मोक्ष साधक के आत्म-वल मे से ही प्रसूत होता है !"

श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख जीवन के दो चित्र थे—गोपाल और इन्द्र। एक विरोधी, दूसरा सेवक ! एक त्रासक, दूसरा भक्त !! परन्तु भगवान् दोनों को समत्व दृष्टि से देख रहे थे। न गोपाल के अकृत्य के प्रति घृणा और न इन्द्र की भक्ति के प्रति राग ! यह है—समत्व योग की जनोत्थान मूलक साधना !!

— ज्ञाता० ६/७

शास्ता महावीर किसको महत्व देते ? निन्दा करने वाले को या स्तुति करने वाले को ? असि प्रहार करने वाले को या अर्घ चढाने वाले को ! मारने वाले और सुरक्षा करने वाले की मनः कल्पना से अनन्त गहराई होती है—महापुरुषों के मन की ! आत्मा की !! उनका आध्यात्मिक जागरण गोपाल जैसों से न निन्दित होता है और न इन्द्र जैसे हामियो से प्रभावित होता है। महापुरुष तो 'एकला चलोरे, एकला चलोरे' का संगीत गाते मस्ती मे झूमते हुए ही चलते हैं। महावीर उसी मस्ती मे चले, बढ़े, आगे ही ! सबको पीछे छोड़ अकेले ही !!

— सं०

क्रोध पर क्षमा के गीत !

गजसुकुमाल का गुलाबी बचपन महकने लगा, देवकी के महल में ही नही, द्वारिका नगरी के घर-घर मे, नर और नारी जब कही पर भी मिलकर बैठते, वही पर गजसुकुमाल के यौवन-की, रूप की और लावण्य की चर्चा करते थे। वह मनुष्य नही है, देव है, देव। क्या रूप है! क्या यौवन है! क्या विलास है! क्या देह की कान्ति है! भला, किसी मनुष्य मे इस अद्भुत और अनुपम रूप-सौन्दर्य की सम्भावना हो सकती है? नही-नही, कदापि नही। गजसुकुमाल सुन्दर है, कुसुम से भी सुकोमल है। "*न भूतो, न भविष्यति*।"

देवकी का अमित वात्सल्य, वसुदेव का अपार नेह, और कृष्ण का अपरिमित प्रेम गजसुकुमाल को महलों से और विशेषतः द्वारिका से बाहर नही जाने देता था। कही कोई वैराग्य का निमित्त गजसुकुमाल के दृष्टि-पथ पर न आ जाए—यही शंका सबके मन मे चक्कर काट रही थी। क्योंकि जन्म से पूर्व ही गजसुकुमाल के सम्बन्ध में एक देव की भविष्य वाणी थी: "राजकुमार ज्यों ही तरुणाई के मादक मोड़ पर जाएगा, त्यों ही वह भिक्षु बन जाएगा। वह किसी भी मूल्य पर संसार में न रहेगा।"

भगवान् नेमिनाथ सहस्राम्र वन में पधार चुके थे। नगर में और महल में एक उमंग और उत्साह भर गया था। देवकी और कृष्ण ने गजसुकुमाल से छिपे-छिपे भगवान् के दर्शन को

जाने की तैयारी की। परन्तु गजसुकुमाल के सजग कानों ने वह सुन लिया, जिसे न सुनने देने का आयोजन किया गया था। उसकी चतुर आँखो ने वह देख लिया—जिसे गोप्य रखने का प्रबल प्रयत्न किया गया था। ठीक समय पर, गजसुकुमाल, कृष्ण के पास ही हाथी पर जा बैठा। सजग मनुष्य कभी प्रमाद नही करता।

◎........

जिस राजमार्ग से कृष्ण की सवारी जा रही थी, उसके समीप ही एक सुन्दर, सुकोमल बाला अपनी सहेलियों के साथ कन्दुक खेल रही थी। द्वारिकावासी सोमिल ब्राह्मण की पुत्री सोमा अपने खेल में लीन थी। उसे किसी के आने-जाने का भान नही था। परन्तु कृष्ण की दृष्टि सोमा की सुषमा पर टिक गई। गजसुकुमाल के साथ इसका विवाह करेंगे। यही भावना लेकर कृष्ण ने सोमिल से सोमा की मांग की। उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। "रत्नं समागच्छतु कांचनेन।"

भगवान् के दर्शन, वन्दन और उपदेश सुनकर कृष्ण लौटे। साथ ही गजसुकुमाल भी लौटा, परन्तु कुछ और रूप में, कुछ और ही धुन में! गया था, वैभव और विलास के साथ, पर लौटा तो त्याग और वैराग्य की ज्योति के साथ! गजसुकुमाल ने आते ही अपनी प्रव्रज्या का प्रस्ताव रख दिया। देवकी और वसुदेव का वात्सल्य, कृष्ण का स्नेह और भावजों का मधुर हास-विलास—ये सब मिलकर भी गजसुकुमाल को रोक नही सके क्योंकि त्याग के प्रशस्थ पथ पर अग्रसर होने के लिए उसका मन मचल रहा था!

◎........

एक तरुण तपस्वी, जिसने आज ही त्याग पथ पर अपना

फौलादी कदम रखा था, वह आज ही जीवन की चरम कोटि को छू लेने की कोशिश में लग गया !

सन्ध्या की गुलाबी आभा, चतुर्दिक में परिव्याप्त थी, दिनकर अदृश्य हो गया था। घने मेघों के आंचल में गाये रंभा रही थी। वे दौड़ती हुई आगे-पीछे मुड-मुड़कर अपने प्यारे बछड़ों का प्यारा मुखडा देखने को विकल थी। उनका ममत्व स्तनों में बोझ बन बाहर फूट पड़ना चाहता था। पक्षी आकाश से उतर-उतर कर अपने नीड़ में लौट रहे थे। बच्चे नीड़ से बाहर आ-आकर अपनी माँ की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे माँ की ममता पाने को व्याकुल थे।

● ....

सोमिल ब्राह्मण ने, जो वन से नगर की ओर जा रहा था। उसने देखा, कि मेरा जामाता होने वाला गजसुकुमाल आज मुण्ड होकर तपस्वी बन गया है, श्रमण बन गया है। मेरी कुसुमकोमल बेटी के जीवन के साथ यह खिलवाड़ !

क्रोध मनुष्य को अन्धा बना देता है। सोमिल के मन में क्रोध का तूफान उठा। वह भूल गया, कृष्ण की राजसत्ता को। निर्जन स्थान ने उसे वैर का बदला लेने का अवसर दिया।

पास की तलैया से गीली मिट्टी लेकर ध्यान मुद्रा में खडे तरुण श्रमण गजसुकुमाल के सिर पर पाल बाँधी। जलती चिता से सोमिल ने उसमें धधकते अंगारे भर दिए। इस क्रूर कर्म को करके वह वहाँ खड़ा नही रह सका। मनुष्य के मन का भय ही मनुष्य को खा जाता है।

तरुण तपस्वी का मस्तक जल रहा था। चमड़ी, मज्जा और मांस सभी जल रहे थे। महाभयंकर, महादारुण वेदना हो रही थी। फिर भी वह तरुण योगी अपनी ध्यान मुद्रा से डिगा नहीं। मन के किसी भी भाग में न कहीं पर वैर, न कही

पर विरोध और न कहीं पर प्रतिशोध ! वह मस्त साधक अपनी मस्ती मे मस्त था !! देह और आत्मा के भेद उसके लिए जाने पहचाने हो चुके थे। आत्मा की विभाव परिणति से वह अमर साधक स्वभाव परिणति में रम गया था। सुख और दुःख की सीमाओं को पार करके वह शाश्वत आनन्द की भूमि पर जा पहुँचा था। जो पाना था, वह पा चुका था—आज ही ! आज का साधक, आज ही अजर, अमर और शाश्वत वन गया !

◎.. ......

गजसुकुमाल और सोमिल आज नही है। परन्तु दोनों का जीवन आज भी हमें सोचने को, विचारने को बाध्य करता है, कि क्रोध पर क्षमा की यह महान् विजय है ! रोष पर तोष की शानदार जीत ! दानवता पर मानवता का अमर जयघोष !

उसने सोचा होगा : "यह सब मेरे कृत कर्म का ही फल है। मैं स्वयं करता हूँ, मैं स्वयं भोक्ता हूँ। सोमिल से कभी कर्ज लिया था। आज ब्याज सहित चुका कर हल्का हो रहा हूँ। कौन किसको दु ख देता है ! यह सब तो अपने हाथों का ही खेल है। जिन्दगी की जिस बुलदी से गजसुकुमाल बोल रहा था, वहाँ सामान्य मनुष्य की पहुँच नही, कदापि नही है। ऐसे जीवन धन्य-धन्य है।

◎........ ...

नेमिप्रभु के चरणों में बैठा कृष्ण पूछ रहा था :"भंते, मेरा भ्राता गजसुकुमाल कहाँ है ? वन्दन करने की भावना है।"

"वह कृत-कृत्य हो गया है, कृष्ण !" भगवान् ने गम्भीर स्वर में कहा।

"भंते, क्या एक ही दिवस में उस बाल साधक ने साधना के

चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया ?" कृष्ण ने कातर स्वर में प्रतिप्रश्न किया।

"आत्मा में अनन्त बल है, वत्स! वह क्या नहीं कर सकता है ?" भगवान् ने धीर स्वर में सम्पूर्ण घटना कह दी।

कृष्ण विह्वल होकर बोला :"भंते, वह अनार्य कौन है ? कहाँ रहता है ? इतना साहस उसका ?" कृष्ण रोष की भाषा में बोल उठा !

"कृष्ण ! तुम उसे नगर में प्रवेश करते ही देख सकोगे। अधीर मत बनो, वत्स !" भगवान् ने कहा।

नगर जनों से सोमिल ने जब यह सुना कि कृष्ण, भगवान् नेमि को वन्दन करने गए है, तो अन्दर-ही-अन्दर एक महा भयानक प्रश्न कोंध गया :

"वहाँ वे मेरे पाप को जान लेंगे।"

सोमिल, भयाक्रान्त होकर वन की ओर भागा जा रहा था, उधर से खिन्न, उदासीन और क्रुद्ध कृष्ण हाथी पर बैठ नगर की ओर आ रहा था। सोमिल ने दूर से कृष्ण के हाथी देखा तो भयातुर हो, पछाड़ खाकर गिर पड़ा और मर गया !!

कृष्ण ने सोचा : "यही है, वह दुष्ट कर्म करने वाला पापी !" उसके शव को नगर के वाहर फिकवा दिया गया।

एक दिन द्वारिका महानगरी के घर-घर में गज सुकुमाल के रुप, यौवन और सौन्दर्य की चर्चा थी, और आज नगर के नर-नारी गजसुकुमाल की क्षमा की चर्चा कर-करके दांतों तले अंगुली दवा रहे थे। श्रद्धा, भक्ति और आदर से वन्दन कर रहे थे।

गज सुकुमाल मोम से इस्तपात वन गया, कुसुम से कुलिश

बन गया, फूलों से हटकर शूलों पर चलते हुए भी अपनी मस्ती में मस्त रहा। सोमिल के क्रूर क्रोध पर गजसुकुमाल के करुण भाव, क्षमा के गीत बन—द्वारिका के कण-कण में बिखर गए थे।

अन्त कृ० र० वर्ग ३, अ० ८/8

साढ़े तीन हाथ के इस गोरे काले शरीर में एक अदृश्य किन्तु अद्भुत शक्ति है! विद्युत शक्ति के उपयोग के बारे मे जो बात है, मनुष्य की अन्त शक्ति के सम्बन्ध में भी यही बात है! जिस ओर यह शक्ति लगजाती है उधर से देव, दानव और मानव—इन तीनों की सगठित शक्ति भी उसे उधर से नही मोड़ सकती। गजसुकुमाल के हृदय में सोमिल के क्रोध पर क्षमा के गीत की वीणा बज रही थी! वह ऐसी बजी कि गजसुकुमाल अपने सुकोमल शरीर का भान भूल गया। अन्ततः केवल ज्ञान और निर्माण का अजर-अमर दीपक अनन्त-अनन्त काल के लिए प्रज्वलित हो गया।

— सं०

जय घोष, विजय घोष !

वाराणसी नगरी में काश्यप गोत्र वाले दो सहोदर भाई थे—जयघोष और विजय घोष ! दोनों एक साथ जन्मे थे, एक साथ पालित एव पोषित हुए थे। दोनों में गहरा स्नेह था। दोनो वेद विद्या में पारगत थे। यजन-याजन और अध्ययन- अध्यापन में प्रवीण थे !

"एक वार जयघोष गगा-स्नान करने को घर से निकला। मार्ग मे चला जा रहा था, कि उसने देखा :

एक साँप ने मेढक पकड रखा है, और साँप को मयूर पकड़ने के प्रयत्न में है। जीवन लीला के इस करुण दृश्य ने जयघोष को अन्तर्मुखी बना दिया, वह सोचने लगा :

"हम अपने से दुर्वल जीवन के साथ खिलवाड करते है। परन्तु काल का मजबूत पजा हमें भी पकडने को बढ़ा चला आ रहा है।" जयघोष के मन मे विकृत जीवन को सस्कृत जीवन बनाने की भावना जाग्रत हो गई !

जयघोप ब्राह्मण से श्रमण वन गया। साधना से अपनी आत्मा को भावित करने लगा। वह घोर तप करने लगा—वह तपस्वी बन गया।

इधर विजयघोप वाराणसी मे यज्ञ करा रहा था, उधर जयघोप मास खमण के पारने के निमित्त नगरी में आया। घूमता-घूमता विजय घोप भी यज्ञशाला में जा पहुँचा। परन्तु ब्राह्मणों ने श्रमण का उपहास किया। जयघोप ने विजय घोप से प्रश्न

किए। परन्तु वह उत्तर नहीं दे सका। दोनों भाई दो सिरों पर खड़े थे। एक त्याग के शिखर पर और दूसरा भोग की विषम भूमि पर!

जयघोप ने विजय घोष को सच्चे यज्ञ का स्वरूप बताते हुए कहा :

"इन्द्रियों का निग्रह और मनोवृत्तियों का निरोध ही सच्चा यज्ञ है। शेष यज्ञों से कल्याण और सुख नही मिलता है।

"सच्चा ब्राह्मण वह है, जो सत्य बोलता है, सबसे प्रेम करता है, चोरी नही करता, परिग्रह नही रखता और वासना पर विजय पाता है।

"जाति से कोई भी ऊंचा-नीचा नही होता। जाति जन्म से नहीं, कर्म से बनती है।"

जयघोष की दिव्य-वाणी का प्रभाव विजयघोष पर पडा। वह भी श्रमण बन गया। त्याग, तप, और साधना में लीन रह कर दोनों ने अपना आत्म-कल्याण कर लिया। और अन्त में सिद्ध, और बुद्ध मुक्त बने।

उ० अ० २५/❀

आगमो की कहानियाँ पढते-पढते ही एक धारणा-सी बन जाती है कि यह कथानक इस ढंग से समाप्त होगा और वैसा ही होता भी है। कथानक पढ़ चुकने पर शंका होती है— 'न कोई घात, न प्रति घात, न द्वन्द, न किसी प्रकार का उतार-चढाव, फिर ये क्या कहानियाँ हुई? परन्तु सत्य यह कि पहले का जीवन दुमुई की तरह दोहरे जीवन को वहन नही करता था। हृदय ने जिस सत्य को स्वीकार कर लिया, बस

उसी पर सहज भावेन चल पड़ता था। आज वह बात नही है। हृदय की व्यथा दूसरी ओर प्रकटीकरण का मार्ग चाहती है और मस्तिष्क व्यक्तित्व की सुरक्षा का सम्पादन करता रहता है! जयघोष की वाणी का जादू जब विजय घोष पर पढ़ा तो उसने यज्ञ को आडम्बर मान कर त्याग ही दिया, छाती से नही चिपकाया। जीवन को इकहरा ही रखा दुमई की तरह दोहरा नही!

— सं०

कटु है यह संसार....!

काकन्दी एक सुन्दर नगरी थी, जिसमे जीवन को सुखमय वनाने की समस्त सामग्री उपलब्ध थो। जितशत्रु राजा का शासन वहाँ सबको प्रियतर था। सार्थवाही भद्रा इसी काकन्दी की रहने वाली थी। भद्रा बुद्धिमती, सुन्दरी तथा व्यवहार-दक्षा थी। उसके पास अपार धन-राशि थी।

पति का अभाव होने पर भी पति की विरासत के रूप में भद्रा की गोद में एक सुन्दर, सुकोमल एवं प्रियदर्शनीय आत्मज था—धन्यकुमार! भद्रा का यह प्राण था और था जीवित धन! ससार मे माता के लिए पुत्र से वढ़ कर प्रिय एवं इष्ट अन्य कोई वस्तु नही है। पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाए, परन्तु माता कभी कुमाता नहीं हो सकती। भद्रा का सर्वस्व धन्यकुमार था। उसका पालन-पोषण और शिक्षण—यही भद्रा की साधना थी, और यही थी भद्रा की मातृ-हृदय सुलभ तपस्या। मातृ-हृदय की सहज माँग है: "अपने जीवन के स्वस्थ क्षणों में अपनी पुत्र वधू का मुख देखना।"

सार्थवाही भद्रा भाग्यशालिनी थी। उसने एक-दो नहीं, वत्तीस-बत्तीस पुत्र-वधुओं का सुन्दर मुख देखा था। उनकी सेवा और भक्ति से वह सत्कारित और सम्मानित भी वनी। धन्यकुमार तो अपनी माता को पूज्या कहता ही था। नगर के अन्य लोग भी भद्रा को "माता" इस स्नेह निमज्जित शब्द से सम्वोधित करते थे। भद्रा के गृहस्थ जीवन का पोत, संसार-सागर की

ऊपरी सतह पर आनन्द और मगल से बहा जा रहा था। धन्यकुमार तो मानव-भवसुलभ भोगो में इतना डूबा था कि उसे सूर्य के उदय-अस्त का भी पता नही था।

o···· ·· ····

एक बार महाश्रमण भगवान् महावीर काकन्दी नगरी पधारे। धन्यकुमार ने दर्शन एवं वन्दन किया और देशना भी सुनी। वीतराग की वाणी मे अद्भुत प्रभाव होता है। पहली बार सुनी देशना से ही धन्यकुमार मे हृदय की अनुरक्ति विरक्ति मे परिणत हो गई। जो ससार अभी तक प्रिय और मधुर था, वह अब अप्रिय और कटु हो गया! भोग की तन्द्रा से जागकर धन्यकमार योग के पथ पर चलने को कटिबद्ध हो गया। अपार धन-वैभव का प्रलोभन, बत्तीस पत्नियों का प्रणय-बन्धन और माता की अमिट ममता भी धन्यकुमार को उसके सकल्प से हटा नही सकी।

धन्यकुमार जिस दिन श्रमण बना, उसी दिन से उसने बेले-बेले पारणा करने का अभिग्रह स्वीकार किया। पारणा में भी सरस आहार नही, नीरस आहार लेने की कठोर प्रतिज्ञा की। जिस भोजन को एक कगला भिखारी भी लेने में संकोच करे, ऐसे तुच्छ भोजन को धन्य अणगार ग्रहण करता था। कभी आहार मिला तो पानी नही, और पानी मिला तो भोजन नही। फिर भी धन्य अणगार अपनी मस्ती में मस्त! अपनी साधना में शान्त! अपनी तपस्या में स्थिर! अपने कर्म मे सदा सजग! आत्म-साधना मे देह सहयोगी रह सके, अनुकूल रह सके, इसीलिए उसे भोजन देना, धन्य अणगार ने तय किया था। सर्प जैसे विना रगड़ के विल मे जाता है, वैसे ही धन्य अणगार विना

स्वाद लिए भोजन निगल जाता था। स्वाद जय की यह चरम रेखा थी। संयम तथा तप से अपनी आत्मा को भावित करने के व्रत पर धन्य अणगार अडिग और अचल था। धन्य अणगार अल्प समय की साधना से ही इतनी ऊँचाई पर जा लगा था— जहाँ पर फूल और शूल में भेद रेखा नही थी। अनुकूलता और प्रतिकूलता में पृथक् बुद्धि नही थी।

घोर तपस्या से धन्य अणगार का देह क्षीण और कृश बन चुका था। रक्त, मांस और मज्जा—देह मे नाममात्र को थी। चर्म से आवृत्त केवल अस्थिपंजर ही शेष रह गया था। उठते-बैठते, चलते-फिरते, हड्डियों की कड़कड़ाहट होने लगी थी। धन्य अणगार जीवित था। देह-बल से नही, आत्म-बल से। वह खड़ा होता था, देह-बल से नही, मनोबल से। वह बोलता था, परन्तु बड़ी कठिनता के साथ। साधक अपने जीवन मे भौतिकता से कितना ऊपर उठ सकता है! धन्य अणगार का जीवन आज भी एक चुनौती बनकर साधकों के सामने खड़ा है।

राजा श्रेणिक की राजधानी राजगृही मे महाश्रमण भगवान् महावीर पधारे। श्रेणिक दर्शनों को आया। भगवान् से उसने पूछा :

"भंते, आपके साधक शिष्यों में सबसे ऊँचा साधक कौन है? कौन महादुष्कर क्रिया और महानिर्जरा करने वाला है?" बिना किसी लाग-लपेट के प्रभु का स्पष्ट उत्तर था :

"श्रेणिक, साधकों में सबसे ऊंचा साधक और अणगारों में सबसे ऊँचा अणगार और तपस्वियों में सबसे ऊँचा तपस्वी, धन्य अणगार है। वह महादुष्कर क्रिया करने वाला है, महानिर्जरा करने वाला है।"

राजा श्रेणिक तुरन्त धन्य अरणगार के दर्शन को, वन्दन को गया। गुणी का आदर न करना भी जीवन का एक बड़ा दोष माना जाता है। भगवान् के श्रीमुख से की जानेवाली अपनी प्रशंसा को श्रेणिक से सुनकर भी धन्य अरणगार का मन हर्षित और पुलकित नही हुआ। प्रशंसा और निन्दा, मान और अपमान, आदर और दुत्कार के झंझावातो से धन्य अरणगार का मन अप्रभावित हो चुका था। साधक जीवन के लिए प्रशंसा और सम्मान फिसलन भूमि है, जहाँ फिसलने का हर समय खतरा बना रहता है।

अन्त में, अनुभवी स्थविरों की देखरेख में धन्य अरणगार ने संलेखना की। नवमास का संयम-पर्याय और एक मास की संलेखना करने के बाद धन्य अरणगार देह-त्याग कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में जा पहुँचा। वहाँ से महाविदेह होकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गया।

—अनुत्तरोपपातिक वर्ग, ३, अ० १/४

लेखक कहना चाहता है—भोग और योग, दोनो मानव जीवन के दो छोर है। श्रमण-संस्कृति भोग से योग की ओर अभियान करने का मंगलमय संकेत करती है। भोग का परित्याग पामर मनुष्य नही कर सकता। अपने अन्तरतर मे छुपी बैठी आसक्ति-नागिन पर चोट करना सरल नही। धन्य अरणगार की साधना साधको के लिए वह दीप-स्तम्भ है, जो सदा प्रकाशमान रहकर युग-युग तक सही दिशा की ओर संकेत करती रहेगी।

— सं०

सच्चा त्यागी कौन ?

गणधर सुधर्मा की देशना से भावितात्मा होकर एक कठियारा ने प्रव्रज्या ग्रहण करने की, भव्य भावना अभिव्यक्त की । वह श्रमण बनकर आत्म-साधना में सलग्न हो गया । तप. साधना मे वह सदा अप्रमत्त रहता ।

उस कठियारा को भिक्षु बना देख-वहाँ के लोग परस्पर कहते थे :"पेट भरने को भोजन नही था, तन ढाँपने को कपडा नहीं था और सिर छुपाने को घर नही था, इसलिए भिक्षु बन गया । इसने कौन-सा त्याग किया है ? त्यागने को इसके पास था ही क्या ?"

लोकापवाद के भय से अधीर होकर नव भिक्षु ने सुधर्मा से निवेदन किया :" गुरु देव, मुझे यहाँ से अन्यत्र ले चलिए ।"

अभय कुमार को जब इस घटना का पता लगा, तो उसने गणधर सुधर्मा से प्रार्थना की : "आप यहाँ से विहार न कीजिए । मैं लोगों की भ्रान्त धारणा का समाधान कर दूंगा ।"

अभयकुमार बुद्धिमान् था । कठिन से कठिन समस्या का हल वह कर सकता था । उसने रत्नों की तीन ढेरी लगा ली, और नगर में उद्घोषणा करादी, कि अभयकुमार रत्नों का दान करना चाहता है । हजारों लोग एकत्रित हो गए । अभयकुमार ने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा :"तुम में से जो भी व्यक्ति अग्नि, जल और नारी—इन तीनों का परित्याग करेगा, उसे ये रत्न राशियाँ मैं दूंगा ।" रत्न-राशि लेने को सभी तैयार थे, पर इनका

त्याग करने को कोई भी तैयार नही था।

अभयकुमार की बात सुनकर लोग एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे, और एकदूसरे से कहने लगे :

"इन तीन वस्तुओ के विना जीवन मे रत्न राशि का उपयोग ही क्या ? मूल्य ही क्या ? जल तो जीवन ही है, अग्नि के बिना भोजन कैसे बनेगा ! और नारी तो सुखों की खान ही है। नारी के बिना पुरुष का जीवन निष्फल है। गृहिणी से ही तो घर की शोभा है ?"

तब अभयकुमार ने गम्भीर स्वर मैं कहा : "तुममें से एक भी ऐसा वीर नही है, जो इन तीनों वस्तुओं का परित्याग करके रत्न-राशि ले सके ? वस्तु छोटी हो या मोटी, उसपर से ममत्व भाव हटाना सरल बात नही है। त्याग मे, त्याज्य वस्तु के महत्व का प्राधान्य नही, भावना का ही एक मात्र महत्व है।'

अभयकुमार ने अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए कहा :

"तुम लोग जिसे गरीब, दरिद्र और कगाल समझते हो, और जिसके सम्वन्ध मे कहते हो, इसने कौन-सा त्याग किया है ? इसके पास त्यागने को था ही क्या ? यह तुम्हारी भ्रान्त धारणा है। धन, जन, और परिजन का त्याग ही त्याग नही है, वल्कि अपने मनोविकारों का त्याग ही एक मात्र सच्चा त्याग है। तुम में से कौन यह त्यागने को तैयार है ?"

नगर के लोग अपनी भूल को समझ गए और उन्होंने उस दिन से कठियारा भिक्षु का तिरस्कार करना छोड़ दिया। त्याग के वास्तविक अर्थ को जनता ने समझ लिया था।

—दशवै अ० २, गा० ३ टीका/⊗

त्यागी कौन? जो अपनी साधन-सम्पति का परित्याग करे। भरत और जम्बू त्यागी हैं, जिन्होंने अपनी अपारधन राशि का त्याग किया। परन्तु जो दरिद्र है, रंक है, कंगाल है, जिसके पास छोड़ने को कुछ भी नही है, क्या वह त्यागी है? प्रस्तुत प्रश्न का सम्यक समाधान ही इस कथानक ने स्पष्ट किया है। धन को ही यदि पवित्रका का केन्द्र मान लिया जाता तो अध्यात्म वादियो की वह स्वार्थ पूर्ण नीचना ही होती।

—सं०

आत्मा का अपूर्व धन !

ढंढकुमार महाराज कृष्ण का पुत्र था। वह भगवान् नेमिनाथ की कल्याणी वाणी सुनकर भोग से विमुख हो गया और योग की ओर बढ़ चला था। वह भगवान् का शिष्य बन गया। अल्प-काल मे ही उग्र तप और कठोर साधना से ढंढ मुनि भगवान् के शिष्य-परिवार में सबसे प्रथम हो गया।

....

एक बार कृष्ण ने भगवान् से पूछा: "भंते, आपके १८ हजार शिष्यों में सबसे उग्र तपस्वी, सबसे कठोर साधक और सबसे अधिक श्रेष्ठ चारित्रवान कौन है?"

सर्वज्ञ यथार्थ वक्ता होता है। भगवान् ने कहा: "ढंढ मुनि!" भगवान् का संक्षिप्त उत्तर था।

कृष्ण ने शान्त भाव से पूछा: "भंते, अल्पकाल में ही ढंढ मुनि ने कौन-सी कठोर साधना की है?"

भगवान् ने कहा: "कृष्ण, उसने अलाभ परीषह को जीत लिया है।"

....

"द्वारिका नगरी में जब वह भिक्षा को निकलता तो भिक्षा नही मिलती। अन्तराय कर्म का प्रबल उदय होने के कारण उसे अलाभ ही अलाभ होता और यदि कही लाभ भी होता तो इस लिए कि यह राजकुमार है।

"ढढ मुनि ने एक घोर अभिग्रह कर लिया है कि पर-निमित्त से होने वाले लाभ को मैं ग्रहण नही करुँगा।" ढंढ मुनि के उग्र अभिग्रह को सुनकर कृष्ण के मन में दर्शन और वन्दन की भावना जाग उठी, बोला "भते, ढढ मुनि कहाँ पर है?"

भगवान ने कहा : "यहा से नगरी को जाते समय जब तुम नगर में प्रवेश करोगे, तब ढढ मुनि को देख सकोगे।"

कृष्ण अपने गज पर बैठे जा रहे थे, कि नगरी में प्रवेश करते ही उन्हे ढढ मुनि के दर्शन हो गए। हाथी से नीचे उत कर कृष्ण ने ढंढ मुनि को वन्दन किया, सुख शान्ति पूछी। त्याग-भूमि पर पहुँच कर पुत्र, पिता से भी महान् हो सकता है।

एक सभ्य सेठ ने कृष्ण को वन्दन करते देखा, मन में सोचा :"यह मुनि कोई असाधारण है, जिसको हमारी नगरी के सम्राट् भी वन्दन करते है।"

कृष्ण आगे बढ गए। ढढ मुनि उसी सेठ के घर भिक्षा को गए। सेठ ने श्रद्धा और भक्ति के साथ मोदकों का दान दिया। शान्त भाव से ढढ मुनि भगवान् के चरणो में जा पहुँचे। विनीत भाव से पूछा :

"भते, क्या मेरा अन्तराय क्षीण हो गया है? क्या मेरी यह भिक्षा अपनी लब्धि की है?"

भगवान् ने कहा :"नही वत्स, अभी अन्तराय क्षीण नहीं हुआ। तुम्हारी भिक्षा, पर-निमित्त की है। स्व-निमित्त की नही है। तुम्हें यह सब कृष्ण वासुदेव के व्यक्तित्व से मिला है। ढंढ मुनि को मन में जरा भी ग्लानि नहीं हुई। हाथ से जाते लाभ को देखकर मनुष्य को कितनी वेदना होती है? पर ढढ मुनि शान्त भाव से सोचने लगा :

"यह मेरा लाभ नहीं है, पर का है। यह भिक्षा कितनी भी मधुर और सरस क्यों न हो, मेरे कल्प की नही है।"

ढंढ मुनि शान्त चित्त से मोदकों को एकान्त स्थान पर विवेक से डाल रहे थे, कि शुद्ध परिणति से केवल-ज्ञान प्रकट हो गया। जो पाना था, वह पा लिया। जो करना था। वह कर लिया ढंढ मुनि कृत-कृत्य हो गया।

अलाभ को जीतना कितना कठिन काम है। आशा में प्रसन्न रहने वाले ससार में हजारों और लाखो है, पर निराशा में भी आशा का दिव्य प्रकाश देखने वाले विरले ही होते है।

उ० अ० २, गा० ३१/⊗

संन्यास जीवन, क्या है ? सामारिक प्रलोभन के प्रति घृणा की प्रतिष्ठा ! ढंढ मुनि ने स्वनिमित का भोजन लेना और पर निमित का त्याग देना—यह प्रतिज्ञा अपना ली थी। ।जीवन निर्वाह को भोजन चाहिए, एक ओर यह झुकाव था। दूसरी ओर अन्तराय कर्म को नापने के लिए प्रतीक्षा। दोनो के वीच ढंढ मुनि था। इस मंथन मे उसे मिला आत्म का अपूर्व धन कैवल्य !

— सं०

भोग से योग की ओर

मिथिला नगरी मे राजा नमि राज्य करता था ।

वह भोगों में संसक्त था। भोगों से हटकर योग पर कभी उसका ध्यान ही नही जाता था । दिन-रात भोग-विलास के मादक वातावरण में रहकर नमि अपने आपको भूल-सा गया था। भोगों की चकाचौध मनुष्य को बेभान कर डालती है। परन्तु अन्ततः भोग का परिणाम रोग होता है।

नमि के देह में दाह ज्वर हो गया। दारुण वेदना से वह अत्यन्त अभिभूत रहने लगा।

एक वैद्य ने बताया, कि "बावना चन्दन का लेप निरन्तर करते रहना चाहिए ।"

नमि पर रानियों का अत्यन्त अनुराग था। वैद्य के कहने पर वे स्वयं अपने हाथों से चन्दन घिसने लगी। एक साथ चन्दन घिसने से हाथ की चूड़ियो से होने वाला शब्द भी राजा नमि को सहन न हो सका। वेदना के क्षणों में प्रिय भी अप्रिय हो जाता है।

राजा ने मंत्री से कहा :

"यह खन-खनाहट का शब्द मुझे सहन नही हो रहा है। यह शब्द कहाँ से हो रहा है, और क्यों हो रहा है ?

मन्त्री ने नम्र स्वर में कहा :

"यह सब आपकी शान्ति के लिए है। रानियाँ स्वयं अपने हाथोंसे लेप के लिए चन्दन घिस रही हैं। अतः हाथ की चूड़ियों का यह शब्द है।"

नमि ने विचार किया :

"कभी यह शब्द कितना प्रिप लगता था! और आज कितना अप्रिय एवं कटु लग रहा है!!

o... ....

रानियों ने अपने हाथों में सोभाग्य सूचक एक-एक चूड़ी रखकर शेष निकाल दी. और अपना कार्य चालू रखा। अब महल में मुखरता का स्थान नीरवता ने ले लिया था।
नमि ने उत्सुक होकर पूछा :

"क्या चन्दन घिसा जा चुका?"

"नही, अभी घिसा जा रहा है।" मन्त्री ने कहा।

"तो अब उन का शब्द क्यों नही होता है।" राजा का पुनः प्रश्न था।

मन्त्री ने स्थिति स्पष्ट करते हुए रानियों से कहा : "सौभाग्य सूचक एक एक चूड़ी हाथों में रख कर शेष सब चूड़ियाँ निकाल दी है। अब अकेली चूड़ी खनके तो किसके साथ खनके?"

नमि का प्रसुप्त मानस झकझोर उठा! उसने जागरण की एक अंगडाई ली और फिर गहरे विचार सागर में डूब गया। अन्त में वह इस मूल्यवान मोती को पा गया :

"वह कोलाहल, यह अशान्ति, सब अनेकत्व में हैं, एकत्व में तो शान्ति और आनन्द ही है।"

विचार धारा वदली, एकत्व की साधना करने की भावना

बलवती हुई। सोचा "यदि मेरी व्याधि शान्त हो जाए, तो मैं कल ही भिक्षु बन जाऊंगा।"

मनुष्य के संकल्प मे महान् बल होता है। नमि का तीव्र दाह ज्वर उपशान्त हो गया। चिन्तन करतेकरते नमि को पूर्व-जन्म की स्मृति सजग हो उठी।

• प्रभात होते ही मिथिला जनपद के विशाल वैभव का परि-त्याग कर श्रमण बन गए। एकान्त वन-भूमि में आत्म-साधना का महा प्रवाह प्रवाहित होने लगा। इन्द्र ने ब्राह्मण रूप से प्रत्यक्ष में आकर नमि से ज्ञान-चर्चा की और उसके त्याग वैराग्य की परीक्षा ली, नमि सफल हो गया!

उ० अ० ६/⊗

पानी का बहाव है, जी चाहे जिधर मोड़ लो! मन है, जी चाहे जिधर जोड़ लो! विचार है, जी चाहे जिधर स्थिर कर लो। नमि ने एकत्व भाव मे इतनी गहरी डुबकी लगाई कि मन उधर से ऊब न सका, विचलित न हो सका। एकत्व भाव के ध्यान से साधक मे आध्यात्मिक स्फुररणा होती है। लेखक कहना चाहता है—एकत्व भाव की गहराई पुद्गल से ममत्व हटा देती है।

— सं०

कपिल का अन्तर्द्वन्द

तृष्णा को जिसने जीत लिया, उसने सम्पूर्ण विश्व को जीत लिया। तृष्णा और वासना पर विजय पाने वाला कभी क्लेश नही पाता और न विद्वान कभी निरादर !

कौशम्बी नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। काश्यप ब्राह्मण उसका पुरोहित था, वह सर्व विद्याओ मे पारगत था, राजा उसका सम्मान करता था। पुरोहित की पत्नी यशा थी और उसके पुत्र का नाम था कपिल। कपिल अभी शिशु ही था कि काश्यप का सहसा निधन हो गया। पति के मरने का यशा को अपार दु ख था। कपिल के पिता का पुरोहित पद एक दूसरे ब्राह्मण को मिला। जब ब्राह्मण अश्व पर बैठकर यशा के घर के आगे से निकलता, तो यशा को बड़ी मनो-व्यथा होती। नारी का मन बीते दिनो को याद करके रोने लगता है।

माता के आँसू, पुत्र के जीवन को कभी-कभी मोड देते है। अपनी माता की प्रेरणा से कपिल श्रीवस्ती नगर मे रहने वाले अपने पिता के मित्र, उपाध्याय इन्द्रदत्त के पास अध्ययन को गया। मित्र के पुत्र और मेधावी कपिल ने अध्यापक तथा छात्र सबको अपने विनय और स्नेह-गुण मे बांध लिया। इन्द्रदत्त ने शालिभद्र सेठ के घर पर कपिल के भोजन की व्यवस्था की।

... ...

यौवन की उर्वर भूमि पर विकारों के अंकुर फूटते देर नही लगती। सेठ की दासी और कपिल एक-दूसरे के स्नेह में बंध

गए । दासी सगर्भा हुई । दोनों चिन्ता के सागर में डूब गए । कपिल घबरा गया । नारी स्थिति को संभालने में दक्ष होती है। बोली :"अब चिन्ता करने से क्या ? आप पति और मैं पत्नी ! दोनों को मिलकर गृहस्थ जीवन की गाड़ी खीचनी है ।" और दासी कपिल के साथ सुखमय जीवन जीने के मीठे-मीटे स्वप्न देखने लगी ! पर अपना दास्य जीवन और कपिल की निर्धनता भी उसके सामने थी अतः एक क्षण रुक कर फिर विनम्र शब्दों में कपिल से कहा : "प्रियतम यहां पर धनदत्त सेठ है । उसके घर जो ब्राह्मण सबसे पहले पहुँचकर दर्शनदेता है, वह उसे दो माशा सोना देता है । तुम सबसे ही पहुँच जाओ तो तुम्हे ही मिल जायगा ।"

◎............

कपिल मध्य रात्रि में ही उठकर चल पडा सेठ के घर । चोर समझकर उसे पकड़ लिया गया और प्रातः राजा की सभा में उपस्थिति किया गया । कपिल ने राजा को आप-बीती कह दी । सत्य छुपा नही रह सकता। सन्तुष्ट होकर राजा ने कहा :"अच्छा जो चाहो, माँग लो !"

कपिल अशोक वाटिका में विचार करने लगा : क्या माँगू ? दो माशा से क्या होगा ? हजार, लाख, करोड़ माशों से भी क्या होगा ? राज्य ही क्यो न माँग लूं ?"

◎............

वृक्ष से एक जीर्ण पत्र को पड़ते कपिल ने देखा । जीवन की दिशा बदलने को यह एक संकेत था । अपने जीवन की एक रेखा, कपिल के मानस पर खीच गई । बिचार बदल गया, विश्वास बदल गया, जीवन की पगडंडी ही बदल गई ।....जाति-स्मरण ज्ञान हो गया ···!

भिखारी कपिल जीवन का सम्राट हो गया । वह भिक्ष बन्द

गया। जिसने अपनी तृष्णा के महागर्त को सन्तोष से भर दिया उसका आदर कौन नही करता ? राजा ने श्रमण कपिल को नमस्कार किया।

बन्दी जीवन बिताने वाले पाँच-सौ चोरो को प्रतिबोध देखकर कपिल ने उनके जीवन में भी त्याग की ज्योति जला दी। छह मास की कठोर साधना से केवल ज्ञान-का महा प्रकाश मिल गया। कपिल केवली भगवान् बन गया।

लोभ, तृष्णा, कामना और वासना को जीतने वाला साधक प्रकाश के महा पथ पर चलता है और दूसरों को चलने की भी प्रेरणा देता है।

उ० अ० ८, नि० गा० २५६/⊗

प्रस्तुत कहानी मे दो तथ्य पाठको को आन्दोलित करते है। एक दासी का कपिल से स्नेह हो जाना। दूसरा राजा ने दिल की हवस कहने को कहा तो कपिल का अन्तर्द्वन्द उसे संन्यास जीवन की पावन प्रेरणा दे गया ! उसका द्वन्द केवल उसी का उद्धार नही कर सका, अपितु ५०० अन्य विपथिको का भी उद्धार कर सका। परन्तु तथ्य यहाँ समाधान मागता है कि दासी से कपिल का जो स्नेह हो गया था, उसके स्नेह का मूल्य कपिल ने क्या चुकाया ? लेखक ने वही लिखा जो इतिहास में है या ग्रथो मे है, तो फिर कहना होगा इतिहास और ग्रंथों मे यह सत्य भूल रहा है। तार्किक युग इसका समाधान चाहता है !

सं०

सन्यासी का अन्तर्द्वन्द !

संसार के कारा गृह मे
धस कर भी क्या करूं गा !
और....

क्या करूंगा स्वार्थ से
निचुड़ती इस रूप-सी
के मोह पाश में बंध कर
भी ?
क्या करूंगा रूप का व्या-
पार कर !
घृणा द्वेष प्रतिहिंसा से
प्रपूरीत सकल ही विश्व
यह !
पर विजन में जाकर भी क्या करूंगा !
पलायनवादी कह कर
क्या न मेरा उप हास होगा ?

तब....
विपिन में जाकर भी—क्या करूंगा ?
तो फिर इस अस्थिर जीवन को ले
प्रति पल परीवर्तित इस संसार में
जीकर ही—क्या करूंगा ?
जी ने की हवस से यदि
मैं जी पाया नही,
तो जीकर भी क्या करूं गा ?

पर क्या न यह आत्म हनन होगा ?
और
होगा न क्या, यह पाप महा भयानक ?

ससार की मधुरिमा मुझे मोहती नही,
रसवती का रूप भाता नही,
गिरी-कन्दरा मे गमन लगता,
न्याय सगत नही !
अब तो !
अज्ञात उस नव यौवना का लगता
बस समर्पण प्रिय है !
उसी की व्याकुलता में—
स्वासों मे संगीत,
प्राणों मे सिसकियाँ,
होठो मे मुस्कान—
सभी कुछ है ।
उस अज्ञाता का
मौन निमत्र, मौन सकेत,
और....
मौन उपहास ही
मेरे प्राणो का मौल बताते है !

—एक चिन्तक

ज्ञान पीठ की कुछ उल्लेखनीय पुस्तकें

अहिंसा-दर्शन (दूसरा स०)	उपाध्याय अमर मुनि	४॥)
सत्य-दर्शन	,,	२॥)
अस्तेय दर्शन	,,	१।)
ब्रह्मचर्य-दर्शन	,,	२)
अपरिग्रह दर्शन	,,	२)
जीवन-दर्शन	,,	४)
जीवन की पाँखे	,,	३॥)
विचारो के नये मोड	,,	३)
अमर वाणी	,,	२।)
प्रकाश की ओर	,,	३)
अमर भारती	,,	३)
सामयिक-सूत्र (दूसरा स०)	उपाध्याय अमरमुनि	३॥)
जैनत्व की झाँकी (तीसरा सं०)	,,	१)
जीवन के चल चित्र	,,	२)
उपासक आनद	,,	३)
भक्तामर स्तोत्र (सटीक) (५ वां स०)	,,	।-)
सत्य हरिश्चन्द्र (काव्य)	,,	२)
उज्ज्वल-वाणीभाग १	महासती उज्ज्वल कुमारी जी	३)
,, ,, भाग २,,	,, ,,	२।)

काँटों के राही डा० इन्द्र एम० ए०			१॥)
मंगल वाणी (४ स०) अखिलेश मुनि जी			१॥)
तत्वार्थसूत्र		,,	॥)
सगीत माधुरी	सुरेश मुनि जी सं०	,,	।॥)
सन्मति सन्देश	सं०	,,	॥)
सन्मति महावीर	ले०	,,	१।)
जयवाणी	—मुनि मधुकर		३॥)
चार वात	ले०	मुनि लक्ष्मी चन्द्र जी	।)
प्रेम सुधा पंजाव केशरी पं० मुनि प्रेमचन्द्रजी			२)
जीवन के तीन मोड़ ले० मुनि श्री मल्लजी			।)
पच्चीस वोल	व्या० विजय मुनि जी		॥)
गीत गुंजार	कीर्ति मुनि जी		॥=)
आलोचना पाठ विजयमुनि जी			॥)
श्रावक प्रतिक्रमण	,, ,,		१)
महावीर सिद्धान्त और उपदेश उपा० अमर मुनि			१)
मानवता के पथ पर प्र० मुनि लाभचन्द्र जी			१॥)
पीयूप घट	ले० विजय मुनि जो		१॥

सभ्यता और नैतिकता !

आप जो कहते है, अगर वही करते है तो आप सभ्य है !

आप जो सोचते है अगर वही बोलते है तो आप परम सभ्य है !

आप की वाणी और व्यवहार में, अगर किसी किस्म का अन्तर नही है तो आप अति सभ्य है !

आप नौकर से सेवा लेने मे समय के पाबन्द है तो आप सभ्य है !

आप नौकर का वेतन ठीक समय पर देते है तो आप परम सभ्य हैं !

आप नौकर की सुख सुविधाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखते है तो आप अति सभ्य है !

आप सभा सोसाइटी में ठीक टायम पर पहुँच जाते है तो आप सभ्य है !

आप सभा मे जहाँ भी स्थान मिल जाता है वहीं बैठ जाते है तो आप परम सभ्य है !

आप सभा में जाकर अगर मौन साध लेते हैं तो आप अति सभ्य हैं !

नागरिक जीवन के और भी बहुत से विधिनिषेध है जिनका पालन सभ्य नागरिकों को आवश्यक है । इसी प्रकार सभ्यता और नैतिकता का एक यह दौर है—

आप पुस्तक माँग कर पढ़ना चाहते है तो आप असभ्य है ।

आप पुस्तक मुफ्त में ही पढ़ने की सोचते है तो आप परम असभ्य है !

आप पुस्तक पढ़ कर यदि लौटाते नहीं है, लौटाते भी है तो खराब करके लौटाते है तो असभ्य के साथ-साथ आप अनैतिक भी हैं !

—प्रकाशक